मौनिका।

सूंम-दातार का संवाद

\- आशीर्वाद -

तपस्वी-सम्राट आ. श्री १०८ सन्मति सागरजी महाराज

\- प्रकाशन : अर्थ सहयोगी-

श्री दिगम्बर जैन समाज

शाहपुरा, जिला - भीलवाड़ा (राज.)

\- प्रकाशक -

आचार्य श्री चन्द्र सागरजी महाराज संघ

कृति	:	सूंम दातार संवाद
आशीर्वाद	:	तपस्वी सम्राट आचार्य श्री सन्मतिसागर जी महाराज
संकलन	:	पूज्य आचार्य श्री १०८ चन्द्रसागर जी महाराज
संस्करण	:	प्रथम, २००३
अर्थ सहयोगी	:	श्री दिगम्बर जैन समाज शाहपुरा, जिला- भीलवाड़ा (राज.)
मूल्य लागत	:	१५=०० (पुर्न प्रकाशन हेतु)
प्राप्ति स्थान	:	आचार्य श्री चन्द्रसागरजी संघ
मुद्रक	:	अरिहंत ऑफसेट प्रिंटर्स, टीकमगढ़ (म. प्र.)

शाहपुरा (भीलवाड़ा) श्री दि० जैन मंदिरों में स्थित भव्य जिन प्रतिमाओं के दर्शन

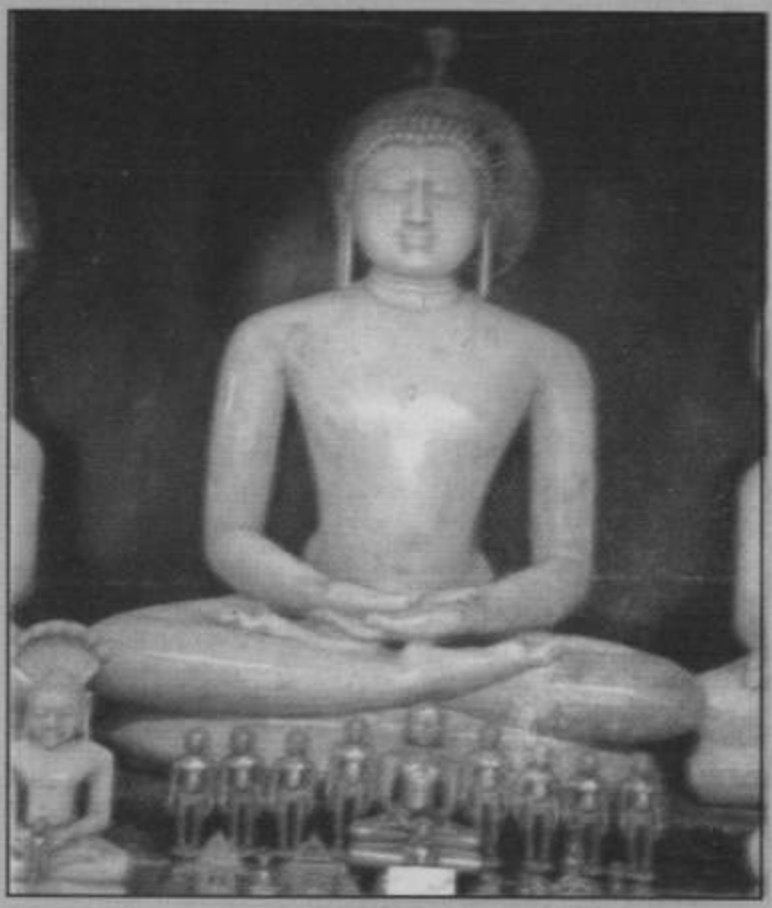

कालाभाटा श्री दि० जैन बड़ा मंदिर के मूलनायक देवाधिदेव भगवान नेमिनाथ स्वामी की अत्यंत मनोज्ञ एवं अतिशयकारी प्रतिमा।

श्री दि० जैन तेरहपंथी मंदिर का एक दृश्य

श्री दि० जैन नसिया जी मंदिर के मूलनायक भगवान पार्श्वनाथ स्वामी

श्री दि० जैन बड़ा मंदिर कालाभाटा की प्राचीन वेदी पर विराजमान महामंगलकारी जैन प्रतिमाऐं।

श्री दि० जैन चित्रकला युक्त नया मंदिर जी शाहपुरा की मूल वेदी के पावन दर्शन।

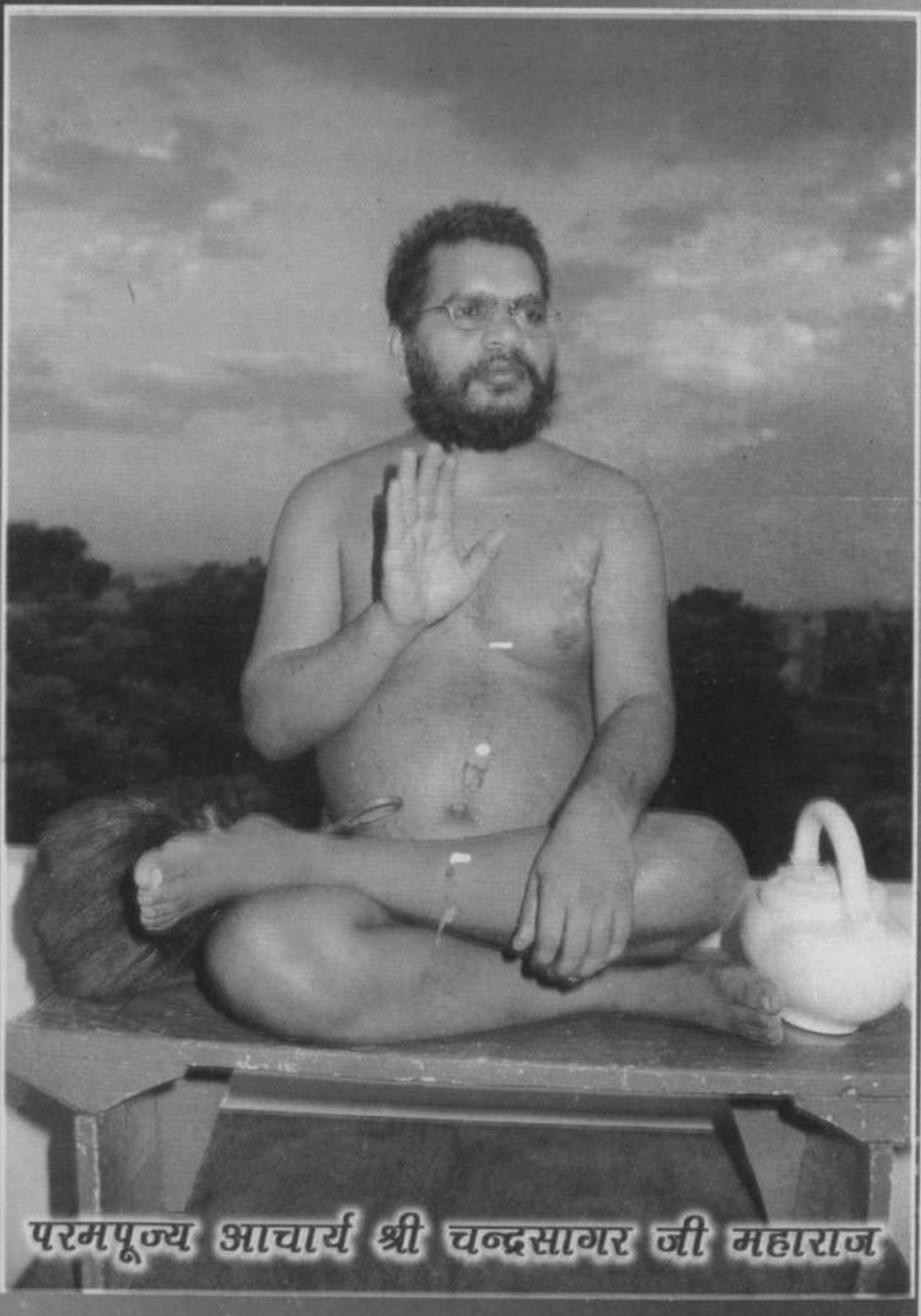

परमपूज्य आचार्य श्री चन्द्रसागर जी महाराज

एक परिचय

शाहपुरा में श्री दि. जैन समाज के चार श्री जैन मंदिर हैं। एक श्री जैन नसिया जी एवं एक जैन भवन है। तथा दि. जैन समाज के 60 घर हैं जैन समाज की सदस्य संख्या लगभग 450 है। श्री दि. जैन मंदिरों की जानकारी निम्नलिखित अनुसार है।

१. श्री दि. जैन बड़ा मंदिर (कालाभाटा) इस मंदिर का निर्माण लगभग 350 वर्ष पूर्व हुआ था। मंदिर जी में छोटी बड़ी कुल 300 दि.जैन प्रतिमाऐं हैं। सबसे प्राचीन प्रतिमा 1000 वर्ष की महावीर स्वामी की है। मूल नायक श्री 1008 नेमीनाथ स्वामी हैं। चार वेदियां हैं। भूतल में एक वेदी में भगवान शांतिनाथ, अरहनाथ, मल्लीनाथ भगवान की तीन खडगासन मूर्तियां हैं। भव्य दर्शन है। मंदिर जी का संपूर्ण नवीनीकरण अभी कराया गया है। मंदिर बहुत बड़ा एवं भव्य है।

२. श्री दि. जैन तेरापंथी मंदिर- यह मंदिर 300 वर्ष पुराना है। मंदिर जी प्रारंभ से ही शुद्ध तेरापंथ आम्नाय से अभिषेक व पूजन होता आया है। लगभग पांच वर्ष पहले इस मंदिर जी का जीर्णोद्धार श्री धन्नालाल वीरसेन जी गदिया द्वारा कराया गया था। मंदिर छोटा है पर बहुत भव्य चित्रकारी से युक्त है। यहां पर लगभग 300 हस्तलिखित ग्रंथों का संग्रहालय एव प्राचीनकला युक्त समोसरण जी हैं। मूलनायक श्री चन्द्रप्रभु भगवान हैं। मंदिर दर्शनीय है।

३. श्री दि. जैन वेदों का मंदिर- यह मंदिर भी लगभग 400 वर्ष पुराना है। इसमें मूलनायक श्री पार्श्वनाथ भगवान हैं। मंदिर जी में श्री जीवराज जी पापड़ीवाल द्वारा प्रतिष्ठित 1548 संवत की लगभग 35 प्रतिमायें हैं। इस मंदिर जी में तीनों वेदियों में छोटी बड़ी 65 प्रतिमायें हैं। दस वर्ष पूर्व मंदिर जी का जीर्णोद्धार श्री घीसालाल जी ताराचन्द्र जी मोदी ने कराया था। मंदिर बहुत सुंदर एवं भव्य है।

४. श्री दि. जैन नया मंदिर जी- सदर बाजार के निकट यह मंदिर लगभग 200 वर्ष पूर्व का बना हुआ है। इसमें मूलनायक श्री 1008 पार्श्वनाथ भगवान हैं। कुल 4 वेदियां हैं जिनमें कुल 14 प्रतिमायें विराजमान हैं। एक वेदी की प्रतिष्ठा श्री रतनलाल जी गोंधा ने संवत 2006 में कराई थी। एवं दूसरी वेदी की प्रतिष्ठा श्री माणकचन्द्र गोधा ने 21.5.89 को कराई थी। इस मंदिर के पास

ही श्री ऋषभदेव जैन औषधालय का भवन भी संवत् 2005 में श्री रतनलाल जी माणकचन्द्र जी गोधा ने बनबाकर ट्रस्ट बना दिया था। तभी से औषधालय बराबर चलता आ रहा है।

५. श्री नसिया जैन मंदिर जी- शहर से लगभग एक किलोमीटर दूर पर नसिया जी 4 बीघा जमीन में बनी हुई है। चारों तरफ चार दिवारी बनी हुई है। चार कमरे पहले के बने हुए हैं। मूलनायक प्रतिमा जी श्री पार्श्वनाथ भगवान की है। श्री मदनलाल जी गदिया ने दो बड़े हाल बनवाये हैं जिनमें समोशरण व नंदीश्वर द्वीप की रचना प्रस्तावित है। श्री पार्श्वनाथ भगवान की नई प्रतिमा अभी बिजोलिया पंचकल्याणक में प्रतिष्ठित कराकर लायी गई है। निकट भविष्य में वेदी प्रतिष्ठा होकर विराजमान होगी। श्री पार्श्वनाथ भगवान की यह प्रतिमा सवा पांच फीट पद्मासन अवगाहना वाली है और यह प्रतिमा श्री संतोष कुमार जी पाटनी परिवार की तरफ से निर्मित एवं प्रतिष्ठित हुई है।

६. जैन भवन- संपूर्ण सुविधायुक्त एक जैन भवन समाज की बस्ती के मध्य में बना हुआ है। भवन अच्छा सुंदर एवं स्वच्छ है। शाहपुरा में दो बार चार्तुमास इसी भवन में हो चुके हैं। प्रथम चार्तुमास मुनिराज श्री विनयसागर जी का सत्रह वर्ष पूर्व हुआ था एवं इस वर्ष सत्र 2002 का चातुर्मास पूज्य आचार्य श्री चन्द्रसागर जी महाराज का सहसंघ सानन्द सम्पन्न हुआ। एवं चातुर्मास के दौरान दशलक्षण पर्व में श्रीमान् प्रतिष्ठाचार्य पं. विमलकुमार जी सोंरया टीकमगढ़ (म.प्र.) के सानिध्य में मण्डल विधान एवं पूजा अर्चना बहुत ही धर्म प्रभावना के साथ सम्पन्न हुई।

चातुर्मास अन्तर्गत अष्टान्हिका पर्व एवं अन्य सभी पर्वों को आचार्य श्री चन्द्रसागर जी महाराज एवं ससंघ के साथ हर्षोल्लास पूर्वक मनाये गये ऐसा लगता था जैसे चार माह तक धर्म की गंगा बही हो, समाज की महिलाओं, युवा वर्ग ने सभी कार्यक्रमों में बढ़-बढ़ कर हिस्सा लिया।

आचार्य श्री चन्द्रसागर जी महाराज के ऐतिहासिक प्रभावना पूर्ण चार्तुमास की स्मृति में इस पुस्तक का सकल दि. जैन समाज की सद्द्रव्य से प्रकाशन किया गया है। पुस्तक प्रकाशन का उत्तरदायित्व श्रीमान् पं. वर्द्धमानकुमार जी जैन सौंरया अरिहंत ऑफसेट प्रिंटर्स टीकमगढ़ (म.प्र.) ने निर्वाहन कर थोड़े समय में इसका रोचक शुद्ध मुद्रण कराया। अत: हम उनके आभारी हैं। ❋

प्राक्कथन

वर्तमान शदी में बालब्रह्मचारी आचार्य श्री चन्द्रसागर जी महाराज एक सरल स्वभावी, शान्त ज्ञान ध्यान तप में निरत सौम्य वीतराग मुद्रा युक्त परम सन्त के रूप में भव्यों का उपकार करनेवाले महान सन्त हैं।

आपके द्वारा अबतक अनेकों महाव्रती जनों एवं आर्यिकाओं की दीक्षाऐं हुईं जो वर्तमान में कल्याण के मार्ग पर अग्रसर हैं। पूज्य आचार्य श्री का देश के जैन विद्वानों के प्रति बहुत सम्मान करते हैं। पूज्य गणेशप्रसाद जी वर्णी के वाद बुन्देलखण्ड के गौरवमय आचार्य के रूप में उनका नाम अग्रणी है।

आपके द्वारा लिखित सम्पादित अनेक ग्रंथ अब तक प्रकाशित हो चुके हैं अधिकांश ग्रंथ तो तीन-तीन या चार-चार संस्करणों में प्रकाशित होने के बाद भी समाप्त हैं। प्रसन्नता है सूंम दातार का सम्वाद नामक यह कृति विद्वान आचार्य श्री की प्रेरणा से उनके ही द्वारा सम्पादित प्रकाशित हो रही है। इसके प्रकाशनकर्त्ता श्रीमान् सकल दिगम्बर जैन समाज शाहपुरा (भीलवाड़ा) राजस्थान विशेष धन्यवाद के पात्र हैं जिनकी सद्द्रव्य से इस कृति का प्रकाशन साकार हो रहा है।

दिगम्बर जैन ग्रंथों के प्रकाशन की परम्परा में वर्तमान भारतीय जैन प्रकाशनों में श्रेष्ठतम मुद्रक अरिहंत आफसेट प्रिंटर्स टीकमगढ़ (म.प्र.) के संचालक प्रतिष्ठाचार्य पं. बर्द्धमान कुमार जी जैन सोंरया विशेष धन्यवाद के पात्र हैं। जिन्होंने अत्यल्प समय में इस कृति का सुरुचिपूर्ण प्रकाशन किया।

अपने सहृदयी स्वाध्यायी जनों विद्वानों एवं साधर्मी श्रावक श्रेष्ठियों के कर कमलों में इस कृति को समर्पित करते हुए गौरव का अनुभव करता हूँ। आशा है आचार्य श्री चन्द्रसागर जी द्वारा सम्पादित यह कृति पूर्व प्रकाशित कृतियों की तरह लोकव्यापी गौरव प्राप्त करेगी।

प्रतिष्ठाचार्य पं. विमलकुमार जैन सोंरया

श्री महावीर जयंती 2003

एम. ए. शास्त्री

प्रधान सम्पादक-वीतरागवाणी मासिक

टीकमगढ़ (म.प्र.)

आशीर्वाद.....

वर्तमान युग में भगवान आदिनाथ से भगवान महावीर श्रुत परम्परा के मूल कर्ता हैं तथा गणधर वृषसेन से गणधर गौतम स्वामी प्रमुखाधार हैं। उसके बाद अर्वाचीन ऋषियों से श्रुत परम्परा प्रवाहित होती आ रही है।

आज ख्याति प्राप्त आचार्य कुंदकुंद देव का नाम श्रुत परम्परा में अच्छी तरह से लिया जाता है। इन्होने भगवान सीमंधर स्वामी से सुनकर श्रुत को प्रवाहित किया है।

बीसवीं शताब्दी में सर्वप्रथम आचार्य परम्परा में मुनिकुंजर आचार्य परमेष्ठी आदिसागर जी अंकलीकर का नाम लिया जाता है। इन्होने अपनी आराधना से आराधित आत्मा से अद्‌भुत श्रुत को जिनधर्म रहस्य, दिव्य-देशना, उद्‌बोधन, शिव पथ (संस्कृत), प्रायश्चित्त विधान (प्राकृत), अंतिम दिव्य देशना, वचनामृत इत्यादि के नाम से आगे बढ़ाया।

इसी परम्परा को आचार्य महावीरकीर्ति जी ने थांदला में आचार्य सुधर्मसागर जी से मगसिर शुक्ला ग्यारस सन् १९३७ वीर निर्वाण संवत् २४६५ वि. सं. १९९५ को क्षुल्लक दीक्षा एवं मुनि दीक्षा फाल्गुन शुक्ला ग्यारस १७ मार्च, १९४३ को ऊदगांव में आचार्य आदिसागर जी अंकलीकर से लेकर और इसी वर्ष गुरु का आचार्य पद चातुर्मास में प्राप्त कर प्रबोधाष्टक (स्वोपज्ञटीका), चतुर्विंशति स्तोत्र, शिवपथ (संस्कृत टीका), प्रायश्चित्त विधान (संस्कृत), जिनधर्म रहस्य (हिन्दी अनुवाद) इत्यादि नाम से ग्रथों का प्रतिपादन किया और इस आचार्य परंपरा के साथ-साथ श्रुत परंपरा को आगे बढ़ाया।

इसी कड़ी में जुड़े हुए निमित्त ज्ञान शिरोमणि आचार्य विमलसागर जी ने आचार्य आदिसागर जी अंकलीकर की परम्परा और आचार्य शांतिसागर जी दक्षिण की परम्परा इस युग में निर्बाध चली आ रही है। वात्सल्य से धर्म प्रभावना करें इस सूत्र से आगे वृद्धिंगत करने में अपना योगदान दिया है।

आचार्य चन्द्रसागर महाराज ज्ञानवान साधु हैं। उनके ज्ञान से समाज लाभ लेती रहती है। उन्होंने कई ग्रंथों का अनुवाद भी किया है जो समाज के मध्य में उनका स्वाध्याय हो रहा है उससे उनकी श्रद्धा होती है, ज्ञान का विकास होता है तथा चारित्र का निर्माण भी हुआ है। प्रस्तुति का नाम सूंम दातार का संवाद है। यह ग्रंथ अपने में विशेषता रखता है। जो दान का महत्व नहीं समझते या दान नहीं देते हैं उन महानुभावों को दान में प्रवृत्त कराने में बहुत ही सुगमता और सरलता से दान का महत्त्व जानकर क्रिया रूप परिणति संभव है। अतः इस ग्रंथ के समस्त सहयोगियों को मेरा शुभ आशीर्वाद है।

श्री महावीर जयंति

२००३

आचार्य सन्मति सागर

श्री वीतरागाय नमः

श्री गौतमादि सर्व साधुभ्यो नमो नमः

अथ श्री बुधिप्रकाश नामा ग्रन्थ के अनुसारि कृपण दातार का संवाद लिखिए हैं।

तामें प्रथम ही स्तुति ॥

दोहा –

नमों देव अरिहंत को, नमों सिद्ध भगवान।
वाणि नमो जिन देव की, बुधि देहु मोहि दान ॥ १ ॥

अर्थ - श्री अरिहंत देव को मेरा नमस्कार हो, जो अनन्त चतुष्टय स्वरूप अंतरंग विभूति और समोशरणादि बहिरंग विभूति सहित हैं और जिन्होने संसार के भव्य प्राणियों को उनके हित का उपदेश दिया है। आप संसार के भव्य प्राणियों को अपने समान बना लेते हैं। इसलिए आपके गुणों की प्राप्ति के लिए आप (अरिहंत देव) को नमस्कार होवे।

जिन्होने समस्त घातिया और अघातिया कर्मों को अपनी आत्मा से दूर कर दिया है। इसलिए आप लोकाग्र में विराजमान हो गये हैं। अब आपका पुनः इस संसार में कभी भी जन्म-मरण नहीं होगा। ज्ञान ही आपका शरीर है। औदारिक आदि नौकर्म शरीरों को कभी भी धारण नहीं करेंगे। अतः मुझे भी इन समस्त औदारिक आदि शरीरों से छुटकारा प्राप्त हो, इस पवित्र भावना से मैं (आचार्य चन्द्र सागर) सिद्ध भगवान को नमस्कार करता हूँ।

मिथ्यात्व का नाश करने वाली और सम्यग्ज्ञान को देने वाली ही जिनेन्द्र देव की वाणी है। ऐसी जिनवाणी माता !, हे सरस्वती माता ! हमें कृपा करके

सद्बुद्धि का दान दीजिये। जिससे किपण दातार के संवाद को निर्दोष पूर्वक लिखकर पूर्ण कर सकूँ॥ १॥

दोहा –

झगडो दाता सूंम को, कहो सकल सुखकार।
सुनितैं तो उरलहल है, किरपण भाव निरवार॥ २॥

अर्थ - दाता और सूंम के विवाद को कहते हैं - वह विवाद कैसा है ? जो सकल सुख को करने वाला है, ऐसा सुन उनके हृदय में दान करने की लहर दौड़ गई कि जो कृपण भाव (खोटा भाव) का निवारण करने वाला है और उत्तम परिणामों को उत्पन्न करने वाला है॥ २॥

दोहा –

चोज सुनें सीखैं घनों, रहे सिद्धनी काज।
दाता सुनि हरखैं हीयों, सूंम हीये बहुलाज॥ ३॥

अर्थ - दान की महिमा को सुनकर दान की शिक्षा को अपने कार्य की सिद्धि करने के लिए ग्रहण करना और भी दाता दाताओं को देखकर बहुत ही हर्षित हुए और सूंम हिय में बहुत ही लज्जित हुए॥ ३॥

दोहा –

या सुनितै चित सूंमता, रहे नहिं पल एक।
दया भाव उर में बंधै, देहु दान कर टेक॥ ४॥

अर्थ - इस प्रकार दान की महिमा सुनने से अपने चित्त की मूर्खता एक पल भी नहीं रहती और हृदय में दया भाव बढ़ता है तथा दान देने में दृढ़ता आती है। दान देने से हृदय से कषाय एवं पाप रूप भाव आत्मा से दूर होते हैं॥ ४॥

दोहा –

पुण्य थकी सेवा कुछ सुगम, जो मन बंछै कोय।
पाप उदै राखी न रहै, देखो सब अवलोय ॥ ५ ॥

अर्थ - जो अपने मन को स्थिर करके दान देता है। ऐसा दान देने का समागम व अतिथि सेवा का अवसर बहुत पुण्य कर्म से ही मिलता है। जिससे महान पुण्य का बंध होता है और पाप कर्म का उदय आने पर सब धन वा इन्द्रिय भोग सब देखते-देखते ही विलीन हो जाने वाले हैं। कितने उपाय करने पर उन्हें सदा स्थिर नहीं रख सकते। जो अपने मन में उत्तम भावना को भाकर उत्कृष्ट पुण्य कर्मों का बन्ध कर संसार के दुखों से छुटकारा पा लेता है ॥ ५ ॥

सोरठा –

पापी करै उपाय, कष्ट करै सिर भार ले।
हाथ दाम नहीं आय, विसुध रहे दुख पाय कै ॥ ६ ॥

अर्थ - पापी जीव पाप रूप उपाय करके अपने सिर पर दुख रूप भार को धारण करता है ऐसे जीवों के हाथ में कुछ भी पैसा नहीं आता जिसके कारण वह बेसुध (अचेत) हो दुख ही दुख तो प्राप्त करते हैं। क्योंकि दानादि के न करने से कषायों की वृद्धि होती है और पापों में भी प्रवृत्ति होती है और दोनों की प्रवृत्ति से पाप के भार को सिर से ढोना पड़ता है। पाप से लक्ष्मी कभी पास में नहीं आती है, जिससे सुख रूप सामग्री का अभाव होता है जिसका फल अति दुःख रूप भोगना पड़ता है ॥ ६ ॥

दोहा –

हीन काज बहू ठानि तोहू, उर सब ना भारै।
जाचों बहू थुति आनि, दीन होय करना चढ़ै ॥ ७ ॥

अर्थ- पापी जीव सदा ही हीन कर्मों को करने की जिद्द करता है उसके

हृदय में कुछ भी भलाई नहीं रहती और अपनी बहुत ही स्तुति को पाने के लिए दीन होकर उसी के काम में आगे बढ़ता रहता है ॥ ७ ॥

सोरठा –

पग पनि ही सिर पाध, तन वस तर उर अन नहीं ।
मिलैं नहीं इक ताध भेतैं अशुभ उदै रहै ॥ ८ ॥

अर्थ - दानी के पैरों में सिर झुक जाता है। जो काय को अपनी आत्मा के अधीन करता है वह संसार से तर सकता है और कोई संसार से तरने का उपाय नहीं है। फिर ऐसा मौका बार-बार नहीं मिलेगा और दान के बिना अशुभ कर्म का ही उदय रहता है अर्थात् दान के बिना अशुभ कर्म का ही बन्ध करता है। जिसके सदा मानसिक, वाचनिक व शारीरिक आपत्तियां आती रहती हैं और उनके दुखों को भोगता हुआ मरण को प्राप्त कर नरकादि में जाकर दुखों को भोगता है ॥ ८ ॥

सोरठा –

हाथ छती नठी जाय, भली बने नहीं बावरे ।
पाप उदै तब आय, बल बुधि और सबै विफल ॥ ९ ॥

अर्थ - हाथों की शक्ति नष्ट होने पर फिर अरे बावरे (मूर्ख) कुछ भी भला होने वाला नहीं है और जब पुनः पाप कर्म का उदय आयेगा, तो सभी बल, बुद्धि आदि सब कुछ विफल अर्थात् बेकार हो जायेंगे । पुण्योदय से ही शक्ति, उत्तम बुद्धि प्राप्त होती है और पापोदय से शक्ति व उत्तम बुद्धि का अभाव हो जाता है ॥ ९ ॥

सोरठा –

तातै भो सठ जीव, मांनि कह्यो मेरो सही ।
किरपण भावना कीव सुख दुख तो है कर्म तै ॥ १० ॥

अर्थ - इसलिए हे मूर्खानन्द ! अज्ञानता को छोड़कर और हे जीव आत्मन् मेरा कहना मानो मैं सही बताता हूँ कि इस किरपण रूप खोटे भाव को छोड़ो संसारी प्राणियों को शुभ और अशुभ कर्म व भावों से ही सुख-दुख प्राप्त होते हैं। अंत में मर कर कृपण भावना वाला देवों में जन्म लेकर सदा काल मानसिक दुःखों को उठाता है ॥ १० ॥

सवैया इकतीस (३१) –

नंदी ताल दधि माहिं नाव बैठी फिरो कोई लेय कै,
अग दोपगचलो खेद खाव रे।
धोरे पराए आगै पगै आप चलो घने,
बोझ सीस धारि भावै पग नही उठावरे ॥ ११ ॥

अर्थ - नदी तालाब समुद्र को पार करने के लिए कोई नाव में बिठाकर ले जायेगा तब पार होगें। और नंगे पैरों से तो दो चार पग (कदम) चल फिर खेद खिन्न हो जाते हैं। दूसरे के घोड़े के आगे आप बहुत पग (कदम) चल लेगें। अपने सिर पर भार उठाकर पैर नहीं उठेगें ॥ ११ ॥

सवैया –

दीन होय बोलो भावै करि तैं पग चपी।
करि निसा दिन धावो चढ़ूं वीर खेद खाव रे।
इत्यादिक बहुते उपाय ठांनि भोरे जीव।
पाप उदै भली वस्तु हाथ नहीं आवरे ॥ १२ ॥

अर्थ - वह सूंम दीन भावों सहित दीनता के वचनों को बोलता है। रात दिन दूसरों की पग चंपी (पैरों को दबाता) करता हुआ चारों ओर भरी धूप में खेद खिन्न होता है। इत्यादि नाना प्रकार के उपायों को करता है। आचार्य कहते हैं कि हे भोले प्राणी ! पाप कर्म के उदय से कभी भी उत्तम वस्तु हाथ में नहीं आती है।

अर्थात् पाप कर्म के उदय से अमृत भी विष हो जाता है। रत्न-कांच, राजा रंक हो जाता है और पुण्य कर्म से अग्नि कुण्ड, जल कुण्ड हो जाता है। अतः अपने जीवन में जितना भी हो सके उतना दानादि करके महा पुण्योपार्जन करना चाहिए॥ १२॥

दोहा –

तातैं सुनों विचक्षनो, ऐसो हित उपदेश।
राख्यो तन धन ना रहे, रह्यो न रह सी लेश॥ १३॥

अर्थ - इसलिए हे बुद्धिमानों! यह आत्म हित का उपदेश आचार्य श्री देते हैं कि यह तन और धन को कितना भी प्रयास किया जाय परंतु यह तन और धन सदा रहने वाला नहीं है। अतः पाप कर्म के उदय से जमीन (भूमि) में रखा हुआ भी धन निकल जायेगा इस तन और धन दोनों की एक समय के लिए भी स्थिरता नहीं मानी जा सकती। उनका तो नाश होना स्वभाव है॥ १३॥

अडिल्ल छंद –

रह्यो न रहसी लेश सत्य मन आनिएं।
रावन से अब लोय गए सब हानिए।
षट् खण्डी सुर राय तनी सास्वत नहीं।
देखत नसि जाय जाय कै तन सही॥ १४॥

अर्थ - आचार्य श्री कहते हैं कि इस परम सत्य को अपने मन में निश्चय मान लीजिए कि इन तन, धन दोनों की स्थिरता लेश मात्र भी रहने वाली नहीं है। त्रिखण्डाधिपति अर्ध चक्री रावण के तन का बल, धन वैभव और षट् खण्डाधिपति चक्रवर्ती का वैभव, चौदह रत्न, नव निधियाँ, चौरासी लाख हाथी, रथ आदि का वैभव जिसकी रक्षा स्वयं देवों के द्वारा होती है। ऐसे वैभव शाली एवं बल शाली भी देखते-देखते नाश को प्राप्त हो गये। पुण्योदय से ही धन वैभव सुख के कारण होते हैं॥ १४॥

दोहा –

दाता तो निज भाव सो, खरचै ही धन वीर।
पुण्य उदय तै पाईयो, पुण्य विषै खरचीर ॥ १५ ॥

अर्थ - दाता अपने निर्मल भावों से धन को धन वीर बनकर खर्च करता है और वह विचार करता है कि यह धन पुण्य कर्म के उदय से ही प्राप्त होता है और पुण्य कर्म से ही पुण्य कार्यों में धन खर्च हो पाता है। पुण्य से धन पाया है और पुण्य कार्यों में खर्च करना चाहिए॥ १५ ॥

गीता छंद –

सुतै भाव सु देहि दाता कहै ताकौं कौन जी,
जग मांहि जस तिस भयो चव दिस धन्य लछि धन्य भवन जी।
उपदेश अति ही सूंम कौनही काय दे धन दे नहीं,
उपदेश है जो रह सिपावै मरण तो सब ही मही ॥ १६ ॥

अर्थ - आचार्य श्री दाता कह रहा है कि जो स्वयं भाव से दाम (धन) को दान में लगाता है उसका संसार में चारों और दाता धन्य है, दाता धन्य है और इस का घर भी धन्य है ऐसे उत्तम वचनों से उस दाता का यश फैलता है। इत्यादि सूंम को बहुत उपदेश देने पर भी उसने अपने धन को दान में नहीं दिया। सूंम को पुनः उपदेश दिया कि इस धन को कितना भी छिपा कर, कहीं भी रखा जाये, धन से कितना भी मोह किया जाये परंतु मरने के उपरांत परलोक में साथ जाने वाला नहीं है। तन का मरने पर नाश होगा ही॥ १६ ॥

सोरठा –

सूंम कहा दातार, सब ही सुनियों भाव सूं।
कथन करो सुखकार, तासुनि उपजै हित घनौं ॥ १७ ॥

अर्थ - इस सूंम दाता संवाद को सब भव्य जीव मन स्थिर करके अच्छे भावों से सुने, यह संवाद रूप कथन बहुत ही सुख को करने वाला है तथा संसार के सभी जीवों को उत्तम हित को अर्थात् संसार के जीवों का बहुत ही कल्याण करने वाला है ॥ १७ ॥

अडिल्ल छंद –

जुगति एक उपजाय कहौं सुनि वीर रे ।
दाता इक नर सूंम जाय मग तीर रे ।
इन दोन्यो के मांहि वाद इम थाई यो ।
ताको सुनि व्याज्ञान प्रगट इम पाइयो ॥ १८ ॥

अर्थ - दाता कहते हैं कि एक युक्ति हमें उत्पन्न हुई है उसे हे वीर सुनो ! दाता एक जो सूंमा को संसार से पार कराना चाहते हैं। दाता और सूंम दोनों में एक संवाद इस प्रकार हुआ। उसको प्रगट करते हैं, जैसा ज्ञानियों से सुना है। विद्वानों ने कहा है, उनके ही अनुसार मैं कहता हूँ सो सुनो। दान धर्म करने से आत्मा पवित्र होती है। कर्मों के भार से आत्मा दूर होती है और जो मूर्ख लोग दान धर्म को नहीं करते हैं वे सदा संसार में पतित बने संसार के दुःखों को उठाते हुए भ्रमण करते रहते हैं ॥ १८ ॥

दोहा –

दाता कही संसार मैं, थिरी वस्तु को नांहि ।
देखत-देखत जाय है, तन धन बंधू ठाहि ॥ १९ ॥

अर्थ - दाता कहते हैं कि संसार में कोई भी वस्तु स्थिर रहने वाली नहीं है। देखते ही देखते यह तन (शरीर) और धन तथा बंधु भी इस नाश को प्राप्त होते हैं अर्थात् अमर रहने वाले नहीं है। इन नेत्रों से दिखने वाला प्रत्येक पदार्थ नाश होने वाला ही है। संसार में जो भी पदार्थ उत्पन्न होते हैं उनका नाश भी निश्चित रूप से होता है ॥ १९ ॥

पद्धड़ी छंद –

सुत नारि काय धन जग मझार, राखे न रहे विनसै निहार।
तातै जु धर्म सेवन स्व सार, धन दांन निमत करनो विचार॥ २०॥

अर्थ - दाता कहते हैं कि संसार में पुत्र (बेटा), स्त्री, शरीर, धन, वैभव आदि सभी देखते ही देखते नाश होने वाले हैं। पुत्र आदि इन्द्र धनुष के समान व बिजली की चमक के समान जानो इसलिए दानादि धर्माचरण करके अपना आत्म हित करो। इस शरीर को पाकर धर्म का सेवन करना ही सार है और धन को दान आदि के निमित्त खर्च करना ही सार है।

संसार में परिवार पक्षियों के समान वियोग रूप है, धन वैभव बरसात में बहते हुए पानी के समान है। यदि धन वैभव को रोकना है तो धन को धर्म कार्यों में लगाते रहो। वरना किसी भी तरह रूकने वाला नहीं है। संसार में जिस समय से संयोग होता है उसी समय से वियोग उसका पीछा करने लगता है॥ २०॥

दोहा –

मूरिख सुनि वच रोस करि, बोल्यो वचन हुतास।
ऐसे वैन न बोलिये, चपल सकल किम भास॥ २१॥
- सूंम वचन

अर्थ - दाता के वचनों को सुन कर मूर्ख रोष (क्रोध) करता हुआ उपहास के वचन बोलता हुआ कहता है कि सारा धन आदि चपल है। ऐसे वचन आदि नहीं बोलना चाहिए। कैसे कहते हो कि यह सारा धन हमारा साथ देने वाला नहीं है। उसे तुम इन्द्र धनुष के समान नाशवान कैसे कहते हो ?॥ २१॥

अडिल्ल छंद –

सुत नारी धन जगत, विषै सुख कार है।
या सुख तै सुख जगत विषै निरधार है।

नाना कष्ट सुखाय भटकि धन लाईये।

सोपर कौं किंम दान दीयो कहू जाईये॥ २२॥

अर्थ - संसार में पुत्र, स्त्री और धन के द्वारा जो सुख होता है, वह सुख निराधार अस्थिर होता है। संसार में यह प्राणी सुख के लिए नाना कष्टों को उठाता हुआ धन का संग्रह करता है, यहाँ-वहाँ भटकता रहता है। ऐसे कठिन कष्टों से कमाये धन को दूसरों को दान में कैसे दिया जाय ? भोगों में खर्च करते रहने या जोड़-जोड़ कर बनाये रखना ही चाहिए। दान में खर्च नहीं करना चाहिए। जब दूसरों को ही देना हो तो उसे कमाने का क्या प्रयोजन है ? इतनी मुश्किल से कमाया हुआ धन पर (दूसरों) को दान में क्यों दिया जाये ? ॥ २२॥

सोरठा –

दाता कहै सुनि वीर, आखिर मरणो है सहि।

निमत धरम की धीर, खरच कीजिए द्रव्य को॥ २३॥

अर्थ - दाता कहता है कि संसार में जिसने जन्म लिया है, उसे अन्त में मरना तो निश्चित है। हे वीर ! इस बात को ध्यान से सुनो, यदि धन को पर लोक में साथ ले जाना चाहते हो तो धन को धर्म के निमित्त से खर्च करो। जिससे परलोक में धर्म के निमित्त खर्च करने का उत्तम फल सुख शान्ति को प्राप्त कर सकोगे। वरना धन तो साथ में बांध कर न ले जा पाओगे, यहीं पड़ा रह जाएगा। हे धीर धर्म के निमित्त से धन को खर्च कीजिए। जिससे धन अधिक समय तक रह सकेगा और फिर उससे सुख भी प्राप्त हो जाएगा॥ २३॥

वेसरी छंद –

धरम निमत धन खर्चे भाई, सुर सिव होय जगत जस पाई।

विन खर्चे धन्य अनि जन खावै, आप लेय अप जस मरि जावै॥ २४॥

अर्थ - अरे भैया ! धन को धर्म के कार्य में खर्च कर ले, जिससे इस लोक

में सब जगह यश कीर्ति फैलेगी और पर लोक में स्वर्ग मोक्ष के सुखों को अनुक्रम भोगेगा। यदि धर्म में धन को खर्च नहीं किया और भोगों में भी खर्च नहीं किया, मात्र धन को जोड़ने में रात-दिन लगा रहा, तो उस धन को अन्य लोग लूटकर, छीनकर, या चोर डाकू आकर शस्त्र आदि का बल दिखाकर ले जायेंगे और दुखी होता हुआ संसार में अपयश पाकर मर जायेगा। इस लोक में अपयश और परलोक में दुखों को प्राप्त होगा॥ २४॥

दोहा –

कही सूंम जातैं कही, कहतै क्या लगि जाय।
द्रव्य लह्यो बहु पाप तै, सो किम खर्चयो जाय॥ २५॥
- सूंम वचन

अर्थ - मूर्ख कहता है कि धन तो बहुत ही पाप कर झूठ, छल, चोरी आदि के द्वारा कमाया हुआ है उसे धर्म में कैसे खर्च किया जा सकता है ? अतः यह द्रव्य (धन) धर्म, दान आदि में खर्च नहीं किया जा सकता है अर्थात् धर्म कार्य में खर्च करने योग्य नहीं है। धर्म से कमाये द्रव्य को ही धर्म में खर्च किया जाना योग्य है॥ २५॥

सवैया इकतीसा॥ ३१॥

द्रव्य के कारण मैं सहे बहु संकट रे,
बहुते कुदेव पूज्यनीठि कैरि झाय थे।
तबै मोहि राजी होय दोनो है द्रव्य लाल,
ऐसे परतीति धार धने गुन गाये थे॥ २६॥

अर्थ - मूर्ख कहता है कि इस द्रव्य (धन) के कमाने में मैंने बहुत से संकटों को सहन किये। धन कमाने के लिए मैंने न तो भूख प्यास को देखा, न सर्दी-गर्मी को देखा, यहाँ तक खून-पसीना एक करने रूप कष्ट को सहे। धन के खातिर

अनेक प्रकार के कुदेवों को पूजा, उनके आगे बलि देकर उनको राजी किया इस प्रकार से अपने आप में महसूस करते हुए उनके (कुदेव) गुणों को गाया। उनकी अनेक प्रकार से स्तुति प्रशंसा की थी, तब उन देवी-देवताओं (कषाय पापों से सहित) ने हमें धन दिया है॥ २६॥

सवैया इकतीसा –

तातै यह माल ओर काज नहीं आवत है,
राख्यो है जोरि वीर घने सिर नाये थे।
ऐसे माल यौंही धर्म मांहि कैसे दीयो,
जाय विन सेगो कैसे देव भो पाम नाये थे॥ २७॥

अर्थ - यह धन और व्यापार बड़ी मुश्किल से प्राप्त होता है। इसलिए इस धन को जैसे बना वैसे लक्ष्मी को, कुदेवादि को बहुत ही सिर झुकाकर, हाथ जोड़कर, धन को जोड़-जोड़ कर रखा है। ऐसी कठिनता से प्राप्त हुए धन को धर्म में कैसे दिया जाय ? मैंने तो देवों को माथा झुका-झुका कर धन को प्राप्त किया है वह नाश को कैसे प्राप्त हो सकता है। यह धन धर्म में ऐसे थोड़े ही खर्च किया जाता है। देवों ने दिया है, इसलिए उसका नाश कैसे हो सकता है ? अर्थात् नहीं हो सकता है॥ २७॥

दोहा –

कहै दाता सुनि रे सठा, पूज्य कुदेव अज्ञान।
दीयो माल इन को सही, मिले नहीं इम जानी॥ २८॥

अर्थ - दाता कहता है कि हे मूर्खानन्द मेरी बात को सुनो ! कुदेवों को पूज्य मानना, उन्होंने माल दिया है और उनको (कुदेव) न पूजता तो माल नहीं मिलता यह सब तेरी अज्ञानता है। ऐसी अज्ञानता को छोड़ तभी आत्मा का हित होगा। दानादि के द्वारा होने वाले पुण्य से ही धन आदि सुख रूप सामग्री प्राप्त होती है

और पाप कर्म के उदय से वही धन, इन्द्रिय भोग सब दुख देने लगते हैं अर्थात् दुख रूप हो जाते हैं॥ २८॥

अडिल्ल छंद –

पुनि थकी द्रव्य होय घनो मन लाय रे,
तातै देव हु दान दया मन भाय रे।
धर्म विना नहीं माल मूढ़ कछु ना लहै।
धर्म विना ही जीव महा भव दुख सहे॥ २९॥

अर्थ - पुण्य के प्रभाव से मनमाना द्रव्य (धन) बहुत सा मिल जाता है। इसलिए अपने मन में दया (करुणा) भाव धारण करके खूब द्रव्य को दान में दो। धन को पाकर धर्माचरण करो। धर्म के बिना कभी भी किसी को माल प्राप्त नहीं होता है, धर्म के बिना इस भव में दुख प्राप्त होता है और अगले भव में नरक आदि के महा दुख उठाने पड़ते हैं। उन दुखों को बांटने वाला कोई भी नहीं मिलता, अकेले को ही भोगने (सहने) पड़ते हैं। नरक में भूख, प्यास, सर्दी, गर्मी के महा दुख उठाने पड़ते हैं। और धर्म करने से संसार के समस्त प्रकार के दुख समाप्त हो जाते हैं। धर्म के प्रभाव से अनेक जन्मों तक सुख ही प्राप्त होते हैं॥ २९॥

दोहा –

सूंम कहे सुनि रे भया, मोको कहा समझाय।
लोभ देय पर भोतनो, तू मो माल गुमाय॥ ३०॥

- सूंम वचन

अर्थ - मूर्ख कहता है दाता से - तुम हमें क्या समझा रहे हो। मैं सब समझता हूँ। तूम मुझे पर भव में सुख का लोभ देकर हमारे माल (धन) को छुड़ाना चाहते हो। मूर्ख विचार करता है कि वर्तमान सुखों को छोड़कर या दान में देकर आगामी भव में सुख की इच्छा करना व्यर्थ है॥ ३०॥

सवैया इकतीसा (३१) –

घने जीव तैने बहु राए लोभ दे दे दान के,
दीयै तै द्रव्य कहे घनो पाय रे।
सो तौ ऐसी बात घनी जानत हैं मैं भी लाल,
जो ग्रामैं माल जो तो घनों कष्ट खाय रें।
जानै कहा पुण्य फल लागै गो कभू आय,
हाल तो यह जोग्रो थकी धरि ही को जाय रे।
तातैं सारी वात तेरी ओर कहै तेतो सत्य,
कोडी कभू चाहै सो तोक देन ही आय रे॥ ३१॥

अर्थ - बहुत से जीवों ने पर सुख के लोभ बहुत द्रव्य का दान दिया और दिलाया है। सो ऐसी बातें मैं भी जानता हूँ। मैने लाल (रत्न) को ग्रामों में घूम-घूम कर बहुत कष्टों को उठाकर ही कमाया है। कौन जाने कि पुण्य का फल कब, कहाँ, कैसे मिला ? इसका कोई पता नहीं है। पुण्य का फल तो जब मिलेगा तब मालूम होगा लेकिन अभी तो हमारी ही मेहनत का धन खत्म होगा। इसलिए तेरी सारी बातें सत्य है। लेकिन तुम चाहो तब भी एक कोड़ी भी तुम को कभी नहीं दूँगा। आगामी सुख की इच्छा से वर्तमान के सुख को छोड़ना या आगामी काल में वैभव धन प्राप्त होगा ऐसी इच्छा से वर्तमान में प्राप्त वैभव को छोड़ना, दान धर्म में खर्च करना यह मूर्खों का काम है॥ ३१॥

दोहा –

दाता फिरि कहै सूंम सुनि, बात एक मन लाय।
ऐसे द्रव्य राख्यो कहूं, रह्यो न रह सी भाय॥ ३२॥

- दाता वचन

अर्थ - दाता सूंम से कहते हैं कि मेरी बात को सुनो, और उसे अपने मन में धारण करो कि यह धन कभी किसी के पास न रहा है और भैया न यह धन कभी रहेगा। क्योंकि यह धन पुण्य कर्मों के उदय से ही प्राप्त होता है। और कर्म सदा उदय में आते-जाते रहते हैं अतः जब पुण्योदय आता है तो धन आता है पुण्योदय की निर्जरा होते ही धन का नाश हो जाता है॥ ३२॥

चौपाई -

रावण से निज माल गुमाय, अप जस ले दुर्गति पहुँचाय।
चक्री धन राख्यो नहीं रहे, यह काहू की गैल न वहै॥ ३३॥

अर्थ - त्रिखण्डाधिपति रावण जो कि अर्द्ध चक्रवर्ती था उसके भी पापोदय के आते सबका (धनादि) नाश हो गया और संसार में चारों और अपयश फैल गया, आज भी उसका कोई नाम लेना अच्छा नहीं समझता और अन्त में वह मर कर दुर्गति में चला गया। चक्रवर्ती भी अपने वैभव की न तो स्वयं रक्षा कर सका और उसके वैभव की रक्षा स्वयं देव करते थे, तब भी चक्रवर्ती भी उस धन को स्थिर न रख सका। अधिक क्या कहा जाय चक्री भी जब स्वयं अपने शरीर को ही न रख पाया, तो धन को रखना तो बहुत दूर की बात है। यह धन किसी के द्वारा रोका नहीं जाता है। जब वर्तमान में ही एक स्थान से दूसरे स्थान पर नहीं जाता तो परलोक में क्या साथ जायेगा ?॥ ३३॥

दोहा -

उब खाने रावन तने, हमको तुम बतलाय।
द्रव्य हमारो दान में, नाश करावन आय॥ ३४॥

- सूंम वचन

अर्थ - रावण आदि की बात को तुम हमें बताकर, हमारे द्रव्य को दान में दिलाकर, धर्म में खर्च करवाकर उसका (धन का) नाश करवाने के लिए ही

हमारे पास आये हो। मैं अपने द्रव्य का नाश करना नहीं चाहता॥ ३४॥

सवैया इकतीसा (३१) –

भैन भान जी कौं कभू दीयो नाहि रोवतै हूँ,
उनको चुराय मा॰ वंदै धरि राख्यो है।
घर में निज नारि सुत भूखन के मारे दुखी,
आय आय मेरे पासि दीन वैन भाख्यो है।
तोहू भया मैंने दाम एक कभू दीयो नांहि,
मेरे तन ऊपरि घनो कष्ट लाय राख्यो है।
ऐसी रीति दांम दांम जोरि भूमि माहि घग्रो,
पुण्य के निमित्त त्यों ही कैसे जाय नाख्यो है॥ ३५॥

अर्थ - मूर्ख कहता है कि मैंने बहन, भानजी को रोते हुए भी कभी धन को नहीं दिया, बल्कि उनसे भी अपने धन को चुरा करके तिजोरी में बंद करके सम्हाल कर रक्खा है। घर में मेरी स्त्री, पुत्र भी भूख के मारे चिल्लाते रहे, नाना प्रकार से दीनता के वचन मेरे पास बोलते रहे। तब भी मैंने उनको कभी एक दाम (एक टका) भी नहीं दिया। मैंने भी अपने इस शरीर से बहुत कष्टों को फटे-पुराने चीथड़ों से ही काम चला कर, इस धन को रक्खा है। ऐसी रीति (इस प्रकार) से हमने एक-एक दाम को जोड़-जोड़ कर भूमि में गाड़ कर रक्खा है सम्हाल कर रक्खा है। ऐसी कठिनाई से रखे धन को पुण्य के निमित्त कैसे खर्च कर दूँ? ॥ ३५॥

दोहा –

धिग जीवन धन जुगल तुम, धिग कुल बुधि पर जाय।
नर तन धन बल पाय सठ धर्म कभू नहीं भाय॥ ३६॥

- दाता वचन

अर्थ - दाता कहते हैं कि धिक्कार है तेरे जीवन को, धिक्कार तेरे धन को, धिक्कार तेरे कुल को, जो हे महामूर्ख ! तूने नर तन को, धन को और बल को पाकर भी धर्म को कभी धारण नहीं किया। धर्म के प्रभाव से ही यह तुझे प्राप्त हुआ है और यदि अब धन बल उत्तम तन को पाकर धर्म को धारण नहीं किया तो मर कर सप्तम नरक में जाना पड़ेगा ॥ ३६ ॥

चौपाई –

सूंम तनो धन चोरी जाय, कै मूंजी धन अगनि जराय।
कै नृप माल दंड करि लेय, धर्म विषै लागै नहीं तेय ॥ ३७ ॥

अर्थ - मूर्खों के व कंजूसों के धन को चोर डाकू चुरा कर ले जाते हैं, या घास-पूस की तरह अग्नि में जल जाता है, या राजा दंड के रूप में उसके धन को राजकोष में ले लेता है। धर्मात्मा को शान्ति सदा खाने और खिलाने में, कंजूसों को मजा इसी में जोड़-जोड़ मर जाने में। अर्थात् - धर्मात्मा जीवों के पास जब पैसा होता है तो उसे धर्म स्नेहियों को या दीन-दुखियों को खिला कर फिर स्वयं खाकर शान्ति पाता है और कंजूस लोगों को धन जोड़-जोड़ कर मर जाने में शान्ति मिलती है। शान्ति मानता है ॥ ३७ ॥

दोहा –

कहै सूंम सब संग भले, धर्मी संग न लाय।
ता संगतै घर धन सफल, दान विषै ही जाय ॥ ३८ ॥
- सूंम वचन

अर्थ - मूर्ख कहता है कि संसार में सब प्रकार के संग (संगति) अच्छे हैं, लेकिन धर्मी का संग करना अच्छा नहीं है क्योंकि धर्मी का संग करने से घर और धन दोनों ही दान के प्रभाव से सफल हो जाते हैं। परंतु धन को जोड़ने नहीं देते धर्मियों का संग दान में धन को खर्च करवाता है ॥ ३८ ॥

सवैया इकतीसा (३१) –

माल लेए चोर कैसैं धख्यो धः जावते तै,
अगनि कीम लगै भूमि गाड़ी रज डारी है।
राजा किम लेय रहो रंक की समानि होय,
तन तै उधारो खांहि रोटी रज झारी है।
इत्यादिक मैं तो धनी चोकस तै द्रव्य,
राखों खाऊ उधारो लाय लाज सब टारी है।
रूपे को रूपैया धने कष्ट तै कुमायो यार,
दान कैसै दीयो जाय काढ़ो बहु गारी है॥ ३९॥

अर्थ - मेरे धन (माल) को चोर कैसे चुरा सकते हैं ? और कैसे अग्नि में जल सकता है ऐसा तो हो ही नहीं सकता क्योंकि मैंने धन को भूमि में गाड़ दिया है। राजा भी कैसे ले जाएगा। क्योंकि मैं तो रंक के समान तन से रहता हूँ। तन को उधार लेकर रहता हूँ और रोटी भी रज मिली हुई खाता हूँ। इत्यादि प्रकार से मैं धन की चौकसी करके सम्हाले हुए रक्खे हूँ। अपनी इज्जत की भी परवाह न करके लोगों से उधार मांगकर लाता हूँ, फिर उस धन से भोजन करता हूँ। अर्थात् लाज को टालकर कर्ज लेकर खाता हूँ। रुपये से रुपैया को मैंने बहुत ही कष्टों से धन को कमाया है मित्र (यार) ऐसे धन का दान कैसे दिया जाय ? यह धन बहुत ही मुश्किल से प्राप्त किया जाता है। धन को दान में देकर हमें भूखा थोड़े ही मरना है ? ॥ ३९॥

दोहा –

दाता कहै सुनि सूंम सठ, चौकस लाख कराय।
कै धन तजि कै तू नसै, कैदेखत धन जाय॥ ४०॥

- दाता वचन

अर्थ - दातार सूंम को कहते हैं कि अरे मूर्ख इस धन की तू लाख चौकसी करले, धन कभी स्थिर रहने वाला नहीं है। धन को यदि तू दान में धर्म में नहीं देगा तो धन को तज कर तेरा ही नाश हो जाएगा या फिर धन ही तेरे देखते देखते तेरे पास से अन्यत्र चला जायेगा। अतः धन को कैसा भी प्रयत्न करले वह सदा पास में किसी के भी रहने वाला नहीं है। धन का नाश होना निश्चित है ॥ ४० ॥

सवैया इकतीसा (३१) -

राख्यो न माल रहंयो कि सही पै लाख सिंयां नप कोप करोजी।
खोदि खाडा धन मांहि धरो भल, ऊपरि ले बहु भार धरो जी ॥
जाय तवै बहु सोच करो भल रोस करो निज काय हरो जी।
लाख उपाय को नर रहे तातै भव्य यह द्रव्य दान करोजी ॥ ४१ ॥

अर्थ - माल को कितनी ही समझदारी से संभालकर रखो, कितने ही उपाय करो, माल को भूमि में कितना भी गहरा गाड़ कर रखो और गड्डे में रखने के बाद में ऊपर से कितना भी भार रख कर धन को रोकना चाहो तब भी माल (रूकने) रहना वाला नहीं है। माल को रोकने के लिए कितना सोच विचार करते रहें, कितना ही रोष करें और अधिक क्या कहा जाय माल को रखने के रोकने के लिए अपने शरीर का ही विनाश कर दिया जाय, लाखों उपाय करने पर माल रहने वाला नहीं है। इसलिए हे भव्य जीव प्राप्त हुए माल (द्रव्य) को दान में खर्च करो। द्रव्य को दान में खर्च करने से ही द्रव्य को कमाने में होने वाला सारा पाप नाश को प्राप्त हो जाता है, संसार में यश फैलता है और परलोक में भी दुर्गति का निवारण होता है। अतः द्रव्य का दान करना अति उत्तम है। दान के प्रभाव से ही धन को परलोक तक भी ले जाया जा सकता है ॥ ४१ ॥

दोहा -

दान वचन न मों पैं कभू, भूलि न कहो सयान।
दाम देन आ रे नहीं, क्यों न जाहू मो प्रान ॥ ४२ ॥

-सूंम वचन

अर्थ - मूर्ख कहता है कि किसी भी विद्वान ने मेरे से कभी भी भूलकर भी दान देने को नहीं कहा है और न कोई मेरे पास लेने को आया है। अतः अब मेरे प्राण ही क्यों न शरीर से निकल जाय, मैंने धन को दान में कभी न दिया है और न कभी दूँगा॥ ४२॥

सवैया इकतीसा (३१)-

लूट लेहु जोरी करी मारि क्यों न प्राण लेहू,
जाति है निकासि भवै जुध क्यों न ठानो जी।
लेकैं कटारि विष द्वारै आय क्यौं न मरो बुरै,
कहो देस देस लोक निंद जानों जी।
करि कैं फजीत मोकों मिरतक समानि,
गिनो सारी कबूल भैया हींय मांहि आनो जी।
दान देहि दाम एक वैन हिए वज्र समामो पै दाया,
ठानि भैया भूलि न वखानों जी॥ ४३॥

अर्थ - सूंम कहता है कि राजा हो या चोरादिक चाहे जोरी (जबरदस्ती) कर ले जाय, कोई मेरे प्राण क्यों न ले ले, समाज भी जाति से निकाल देवें, राजा आदि कोई भी मेरे से युद्ध ही क्यों न ठान ले। चाहे कोई कटारी से या विष देकर ही क्यों न मार डाले, और देश-देश में मेरे को बुरे (खोटे) वचनों को कहकर निन्दा भी सारे लोक में क्यों न होती हो। सारे नगर वासी मिलकर बुरी से बुरी फजीती करके मुझे मृतक के समान ही कर डाले। सबके हृदय में जो भी मेरे को कहना या करना हो कर डाले। लेकिन दान के नाम से तो मैं एक दाम फूटी कोड़ी भी न दूँगा। मुझे दान करके जश पाने की भी भैया जरूरत नहीं है। न मेरे पर किसी के कहने का प्रभाव पड़ने वाला है। यह बात तो हमने भैया होते ही ठान ली थी कि दान में भूलकर धन खर्च नहीं करना है॥ ४३॥

दोहा –

सूंम सुनो दाता कहै, माल तिहारों वीर।
भूमि विषै रह सीप रचो, खरच्यो धर्म में धीर ॥ ४४ ॥

- दाता वचन

अर्थ - दातार सूंम को कहता है सुनो ! बड़े से बड़े वीरों का भी धन इसी भूमि पर ही रह गया है। साथ में किसी के भी नहीं गया है। अतः धन को धर्म में ही खर्च करना अच्छा है उसी में अपनी आत्मा का कल्याण है। दान और पूजा करने को आचार्यों ने महा पुण्य का कारण कहा है। जिसका उत्कृष्ट फल तीर्थंकरादि पद को या फिर मोक्ष को प्राप्त करना ही कहा है ॥ ४४ ॥

अडिल्ल छंद –

जरो माल बुधि तोहि पाप के रूप रे,
सबही सिर दुख लेय कष्ट की धूप रे।
कौन-कौन की संगि चल्यो अब चलै,
तातै मो वच मानि धर्म करि पुनि मिलै ॥ ४५ ॥

अर्थ - दान में जरा सा (थोड़ा) माल देने में ही तेरी बुद्धि पाप रूप हो गई है। इसके फल स्वरूप अपने सिर पर दुखों को प्राप्त होगा और सदा काल तेरे सिर पर कष्ट रूपी धूप को झेलता रहेगा। संसार में अभी तक किस-किसके साथ-साथ कौन-कौन सी वस्तुएँ साथ में चली गई ? अतः किसी के साथ कुछ भी जाने वाला नहीं है। इसलिए मेरी बात (वचन) को मानो और धन से कुछ धर्म में कार्य कर लो। जिससे अगले जन्म में भी धर्म और सब प्रकार की सुख शान्ति प्राप्त हो जायेगी। यहाँ इस भव में जितना दान दे जाओगे अगले जन्म में उससे कई गुना अधिक प्राप्त कर लोगे। धर्म के प्रभाव से इस लोक में धन व समस्त प्रकार के सुख रूप इन्द्रिय भोग मिलते हैं और परलोक में भी स्वर्ग मोक्ष के सुख

प्राप्त होते हैं। आदिनाथ भगवान को दान देने वाले राजा श्रेयांस जी का नाम आज भी लोक में प्रसिद्ध है॥ ४५॥

दोहा –

सूंम कहो पापी कहो, और कहो दुर वैन।
सबही मोकों है सहि, सहि न कोड़ी दैन॥ ४६॥
-सूंम वचन

अर्थ - सूंम ने दाता की बात सुनकर कहा कि मुझे कोई चाहे पापी कहे और बुरे-बुरे खोटे वचनों को कहे उनको मैं शान्ति से सहन कर लूँगा लेकिन एक कोड़ी देने की बात मुझे सहन नहीं हो सकती है। अतः दान देने की बात मेरे लिए विष जैसी लगती है। दान देने से धन खर्च ही तो होता है॥ ४६॥

सवैया इकतीसा (३१) –

तैनैं कह्यो भया दाम गैल नहीं चलै एक,
दान क्यों न देय कैसे नहीं चल्यों जी।
सो तो मैं जोरि कै इकठो वांधि छाती परि राखौं,
गो जीवन लौनी ठिनीठी मिल्यो जी॥
तेरे भौरायें दाम एक हूं न दान देहूं राक को,
चुराय लौठै धनो माल गिल्यों जी।
ऐसी ठिग हारी तु लगाय कहूं ओठै जाय,
चोरन मैं चोर मैं ही कांगन मैं भिल्यो जी॥ ४७॥

अर्थ - सूंम कहता है दाता से कि तुम्ही कहते हो कि दाम किसी के साथ नहीं जाता, दान को क्यों नहीं देता ? जो साथ में जायेगा। तो सूंम कहता है कि दान से भी धन साथ मैं कैसे चला जायेगा ? इसलिए हम (सूंम) धन को जोड़-

जोड़कर संग्रह करके अपनी छाती पर रखेंगे क्योंकि यह जीवन बड़ी कठिनाई से मिलता है। तुम कितना कहते रहो परन्तु मैं एक पैसा भी दान में नहीं दूंगा। राजा का माल चुराकर बहुत सा धन पाया है। इस प्रकार से धन के स्थानों (ठिकानों) से माल लाने के लिए मैं चोरों में महाचोर हूँ॥ ४७॥

दोहा –

छतै माल ऐसें कहत, लाज न आवत वीर।
मूंछै राखत मुख परै, लोक लाज करि धीर॥ ४८॥
- दाता वचन

अर्थ - वीर तुम माल को साथ रखोगे ऐसा कहते लाज (शर्म) नहीं आती ? बेशर्म होकर मुख पर मूंछों का ताव देते हुए शर्म नहीं आती है। धन क्या कभी किसी के साथ गया है ? जो तुम अपने साथ लेकर जाओगे ? यदि कोई माल को परलोक लें जाना ही चाहता है तो जितना दान इस भव में देगा, उतना माल पर भव में प्राप्त कर लेगा॥ ४८॥

चौपाई –

लोक भलै कहै जीवन तास, लोक निंद जीय मिरतक भास।
तातै सीख हमारी मांनि, देहि दान धन जस पुनि आंनि॥ ४९॥

अर्थ - दातार कहता है लोक में लोग जीवन को दुखी कहते हैं, लोक निन्दा होती है मृत्यु भी प्रतिभासित होती है। इसलिए हमारी बात को मानो और धन को दान में देकर जस को प्राप्त होओ। दान के फल से जस तो मिलता ही है धन भी पुनः प्राप्त होता है। दान तो एक भव में दिया तो उसका फल कई भवों तक प्राप्त होता रहता है। दान दूसरों को दिया जाता है, वह भी एक उपकार करना ही कहलाता है। उसके फल से दान को लेने वाला अगले भवों में अपने ऊपर उपकार करेगा। अतः दान को देकर दूसरों पर उपकार करते रहो॥ ४९॥

दोहा –

माल होत घर मैं भया, वचन लाज कहा होय।
हम मुख मूंछैं मति गिनो, दाम न मैं द्यौ कोय॥ ५०॥

- सूंम वचन

अर्थ - सूंम कहता है कि माल तो घर में रहता है वचन व लाज क्या होता है। हमारे मुख पर जो मूंछ है उसकी गिनती मत करो। हमें लाज व मूंछों की कोई परवाह नहीं है। दाम की परवाह है। मैं दान को किसी भी तरह नहीं दे सकता। चाहे कुछ भी हो। लाज शरम जो आती-जाती है। पैसा गये बाद फिर नहीं आता है॥ ५०॥

सवैया इकतीसा (३१) –

देखो जी हम कौ दोरि दोरि कहें दान देहू,
कहा माल लुटि मैं तै लाए है उठाय जी।
कहां राह पग्रो द्रव्य आवत है हाथि लाल,
नदी वहि आवत नहीं नीठि तै कुमाय जी॥
पेट गांठि दई ओर लोकन की गरी सई,
सीस मोटलई लोक निंदा कराय जी।
ऐसे लछि आई ताकों कहै भया दान देहू,
ऐसे हम भोरे नांहि सीस क्यों पचाय जी॥ ५१॥

अर्थ - तुम बार-२ दान के लिए क्यों कहते हो ? मैं तो माल लूटकर उठाकर ला रहा हूँ, क्या राह चलते भी द्रव्य आता है ? क्या बहती नदी में लाल हाथ लगता है ? माल को तो मेहनत से कमाया जाता है। भूख सहन करके और लोगों द्वारा दी गई गालियों को सहन किया, सिर भी मुंडवाया और लोक में निंदा कराई। ऐसे लक्षण जिसके हैं उसको तुम कहते हो कि भैया दान दो ? हम इतने

भोले नहीं है जो कहते ही दान दे दें। आप हम से माथा मत पचाओ। मैं कुछ भी दान नहीं दूँगा। संसार में तो भैया पैसा ही सब कुछ है। पैसे से ही लोक में इज्जत व सम्मान मिलता है। एक कहावत है कि -"बाप बड़ा न भैया, सबसे बड़ा रुपैया" पैसे के बिना तो पत्नि भी पति को नकटा कहने लग जाती है और पैसे के बिना माँ भी अपने बेटे के बेटा नहीं मानती ॥ ५१ ॥

दोहा –

अरे वीर इम कष्ट तैं, माल पाय भू दाटि।
आप न पायषु वाय आनि, देहि धर्म अघ कारि ॥ ५२ ॥
- सूंम वचन

अर्थ - अरे वीर हम प्रकार कष्ट से माल को पाया हूँ उसे भूमि में नहीं डालना। आपको प्राप्त नहीं हुआ सो वायु अग्नि का कहते हो और धर्म से पाप नाश की बात कहते हो। माल कमाने में हम पाप करते कहाँ है ? जैसे सब कमाते वैसे हम कमाते हैं। वैसे तुम भी कमाते हो सो सारे पैसे का दान देकर तुम ही धर्म से अपने पापों को नाश कर लो। मेरी चिंता छोड़ो। आप ही धर्म से सुख को पाओ ॥ ५२ ॥

अडिल्ल छंद –

कौन काज तै कष्ट खाय पैदा कीयो,
पेट न खायो आप नहीं पुनि कौं दीयो।
दान दीये जस होय सुरग फल पाय हे,
ना तरि तू खय होय तथा यह जाय रे ॥ ५३ ॥

अर्थ - न जाने कौन कठोर काम करके और कष्टों को उठा-उठाकर माल पैदा किया है। अभी तक न तो पेट में खाया है और न किसी को दिया है। दान देने से जस होगा और स्वर्ग का सुख प्राप्त होगा। वरना तो धन का नाश हो जायेगा या कहीं चला जाएगा। दान नहीं देगा तो (स्वयं) पशु-पक्षी होगा। ये बात तुम जान लो ॥ ५३ ॥

दोहा –

हाय हाय को पूर्व अरि, तू आयो नर कोय।
ज्यों-त्यों नय दिष्टांत करि माल हमारो खोय॥ ५४॥

-सूंम वचन

अर्थ - हाय-हाय रे पूर्व भव का तू वैरी है मनुष्य बन यहाँ पर आ गया है, जैसे-तैसे धन को कमाया था सो नये-नये दृष्टांत दे देकर हमारे माल को ले जा रहे हो। मेरे धन को समाप्त करना चाहते हो॥ ५४॥

सवैया इकतीसा (३१)–

तेरे दाव लागै नो तो सब हीं लुटाय देय,
मैं तो ऐसी स्यान पन कुं जानत हौं वावरे।
नर कन को नाम डर पाई लोक निंद नकी,
देय कै हमारो माल दान मैं लगाव रे।
है तो ऐसो वीर तेरै निकट नहीं आवै,
कोय ऐसै द्रव्य खोवन कौं जुगतैं उपावरे।
सो तो घने पाप तै कुमयो पाप मांहि जहैं,
धर्म मैं न जानो वेरथ जहैं तुम दावरे॥ ५५॥

अर्थ - तूम तो नरक का नाम लेकर मुझे डर दिखा रहे हो और लोक निन्दा का भय दिखाकर मेरे माल को दान में लगवा रहे हो। अरे ऐसा कोई वीर मेरे पास नहीं आ रहा है जो खोए हुए धन को भूमि से निकाल दें। हमने धन पाप से कमाया सो पाप में ही जाने दो, धर्म में धन देकर उसे वृथा नहीं करुंगा। दान में नहीं दूँगा। जब धर्म से धन को कमायेंगे तब उस धन को दान धर्म करने में लगा देंगे। पाप का धन धर्म में और धर्म का धन पाप में लगाना उचित नहीं है। दोषों को उत्पन्न करने वाला है॥ ५५॥

दोहा –

भली कहत भो बुधि धनी, करत कषाय सयान।
जीवन को तो जगत में, धारै न क्यों जिन आन॥ ५६॥

- दाता वचन

अर्थ - तुम से तो हम तुम्हारे भले की, हित की बात कर रहे हैं, तुम भी बुद्धिमान समझदार हो फिर भी कषाय को कर रहे हो, संसार के जीवों को जिनेन्द्र देव ने कितनी हित की बात कही है। संसार में जब आपने उत्तम मनुष्य व उत्तम कुल, शरीर को प्राप्त किया है तो उत्तम धर्माचरण को करके अपने जीवन को सफल करना (बनाना) चाहिए। पाप युक्त १००० वर्ष के जीवन से तो धर्म सहित एक दिन का जीवन ही अच्छा है॥ ५६॥

चौपाई –

कही बात पर भो सुख दाय, भो भव्य तुम दरसी है काय।
मरण तनें दिन पहुंचे वीर, तो हूँ चेततो हि नही धीर॥ ५७॥

अर्थ - जिनेन्द्र देव ने संसार के जीवों को हित की बात कही है कि हे भव्य प्राणि ! माल को दानादि में खर्च करने से इस लोक और पर में सुख मिलता है। और अब तो हे वीर तेरा मरण समय निकट आ पहुंचा है, हे वीर तू चेत क्यों नहीं रहा है। तू तो छल कपट करके माल को जोड़-जोड़ कर रख जायेगा और मर कर नरकों में जाकर दुख पायेगा। लेकिन तेरे बेटे पोते छोड़े हुए माल से भोगों को भोग कर मजा लूटेगें। और तू नरकों के घोर दुखों को भोगेगा। सो अगर जो तुम सुख को चाहो और दुख से बचना चाहो तो दान धर्म को करो॥ ५७॥

दोहा –

भले वचन हम कहान कौं, तुमसे और न कोय।
द्रव्य खोव वच तुम कहो मानत है को जोय॥ ५८॥

- सूंम वचन

अर्थ - तुम जो हम से भले वचन कह रहे हो सो तुम्हारे समान महान इस संसार में और कोई नहीं है। लेकिन जो तुम हमारे द्रव्य को खत्म कराना चाहते हो सो हम आपकी दान देने की यह बात नहीं मान पायेंगे ॥ ५८ ॥

सवैया इकतीसा (३१) –

सीख के दिवैया ऊठी भले आए भाग नतै,
बुधि नाहिं किंचित हू और न सिखलावो जू।
कहे माल देय दान मुखतै निकासि दीनी,
लायों न ही सोच कछु भेद न हूं न पावो जू।
ऐसे दिवैया दान तो तो धरि छांडि देहि,
राखो मति दाम एक सब ही लुटावों जू।
आपतो न देय दान ओरन के खोवत घर,
वाजत तो धर्मी पैं दया नहीं भावो जू॥ ५९ ॥

अर्थ - तुम भली शिक्षा देने को आए हो, तुम में किंचित (थोड़ी सी) भी बुद्धि नहीं है। अब बस करो शिक्षा की जरूरत नहीं है। यहाँ आए और मुख से कहने लगे कि माल को दान में देवो। कुछ सोचे बिना और न कुछ भेद जाना। ऐसे दान के दिवैया तो हमने कई छोड़ दिए। पास दाम न रखो और दान में देकर सब धन लुटा दो ? आप स्वयं तो दान देते नहीं है और दूसरों के घर का माल खाते रहते हैं अर्थात् दूसरों के माल को दान में बर्बाद करवाते हैं। मेरे ऊपर तो दया के भाव ही नहीं करते और धर्मी बने फिरते हो। जैन धर्म में भावों को ही प्रधान कहा है सो हमारा काम तो मात्र दान व धर्म के भाव बनाकर ही धर्म करना है। द्रव्य तो रक्खा है सो वह तो रक्खा रहने दो ॥ ५९ ॥

दोहा –

अरे जीव हितदा कहैं, उलटो समझयो वीर।

दान देन सुभश्रुति कह्यो मोहि न चहिए धीर ॥ ६० ॥

- दाता वचन

अर्थ - अरे वीर मैं तो तेरे ही हित के लिए कह रहा हूँ उसे उल्टा क्यों समझ रहा है। दान देने से शुभ बुद्धि होती है तथा अधिक से अधिक दान देने से अच्छे ज्ञानादि की प्राप्ति होती है। तेरा माल मुझे नहीं चाहिए। दाता कहता है- दान के प्रभाव से संसार में प्राणी को जिन-जिन वस्तुओं का संयोग होता है वह सब शुभ (इष्ट) रूप ही होता है। पापोदय से अशुभ रूप संयोग प्राप्त होते हैं। अतः पापों को छोड़ो ॥ ६० ॥

अडिल्ल छंद –

परमारथ के काज वचन तोकू कह्यो,
उलटो समझिसयान दोष तैनै लह्यों।
सूझी कहा है तो ही न जानों बावरे,
मानै नहीं जिन आनि हीए न उपावरे ॥ ६१ ॥

अर्थ - परमारथ (आत्म हित) के कार्य की सिद्धि के लिए ही मैं तुम्हारे वचन को कह रहा हूँ लेकिन तुम समझदार होकर भी दोषों को ही क्यों ग्रहण कर रहे हो। सीधी साफ बात को कह रहा हूँ तब भी तुम बावरे (पागल) बने हुए हो। जिनवाणी के हित रूप वचनों को हृदय में धारण नहीं कर रहे हो ? जिनवाणी के वचन आत्मा को दुखों से छुटकारा दिलाने वाले हैं। इसलिए माता के समान जिनवाणी कहती है कि- "दानं दुर्गति नाशनं, दानं सद्गति कारणं" अर्थात् दान करने से दुर्गति का नाश होता है और दान से ही सद्गति की भी प्राप्ति होती है। इसलिए दान धर्म को करो। श्रावक के धन की शोभा दान से ही होती है। भोगों को भोगने व जोड़-जोड़कर रखे रहने से कभी नहीं होती है ॥ ६१ ॥

दोहा –

तुमसे अबलु जगत में, दिखे न धर्मी और।

दान देन सिख लाय कैं, करत परायो भोर ॥ ६२ ॥

- सूंम वचन

अर्थ - सूंम दाता से कहता है कि संसार में तुम्हारे समान और कोई धर्मी नहीं दिखता है और शास्त्रों में भी तुमको ही धर्मी कहा होगा, इसलिए ही तुम हमें दान देने की शिक्षा सिखाने आये हो। दूसरों का हित करने में लगे हो अपनी चिंता नहीं है ॥ ६२ ॥

सवैया इकतीसा (३१) -

दाम तो हमारे भया प्राननतै प्यारो (तै पारो),
जानि तेरे सिखलाय दीयो जाय नहीं बावरे।
तू तो कहै देहि दान दीनन कूं पुण्य होय है,
मैं ही फिरूं दीन भैया पेटि गांठि लावरे ॥
धर की तीए पूत पिता तनतैं दिगम्बर से,
खानन कौं तरसैं सदा तपसो करावरे।
तो हूं दाम एक मेरे हीए नांहि उतरत है,
ओरन की कहो भैया कैसे दीयो जायरे ॥ ६३ ॥

अर्थ - दान तो हमारे लिए प्राणों से भी प्यारा है, यह तो हम भी जानते हैं। हम मूर्ख नहीं है जो तुम शिक्षा देने के लिए यहाँ आये हो। तूम तो कहते हो कि दीन-दुखियों को दान देने से पुण्य होता है। जब मैं दीनों को दान देता रहूँगा तो फिर भैया मेरी ही पेटी खुल जाएगी। तब तो मैं स्वयं दीनता को प्राप्त हो जाऊँगा। मेरी स्त्री, पुत्र, पिता आदि सब ही को दिगम्बर बनवा कर तपस्या करवाओगे। यह सब होने के बाद भी एक दाम दान देने की बात मेरे हृदय में नहीं उतरती है। ऐसी स्थिति में दूसरों के कहने से भैया दान कैसे दिया जा सकता है ? दान धर्म तो हृदय की भावना से ही होता है। जो दूसरों के कहने से दान देता है वह तो मूर्ख होता है ॥ ६३ ॥

दोहा –

अरे जीव इम सांचि धन, राखत सरम अयान।
लोक निंद तन सुख नहीं परभो होय दुख थान॥ ६४॥

- दाता वचन

अर्थ - अरे जीव इस प्रकार पाप से संचित धन रखते तुझे शर्म नहीं आती है। दान आदि में खर्च किये बिना धन से लोक में निंदा होती है और शरीर भी सुखी नहीं रह पाता है। और परभव में घोर दुःखों का स्थान स्वरूप नरक ही प्राप्त होता है। यदि प्राप्त हुए धन से सुखी होने की इच्छा है तो प्राप्त हुए धन को भोगों में खर्च करने के साथ दान में भी खर्च करना॥ ६४॥

पद्धरी छंद –

भल जीवन ताको जगत जांनि, ताको जस जग धर्म रूप आनि।
धन सफलतास शुभ दान देय, सो धन्य जीव द्रव्य थान जेय॥ ६५॥

अर्थ - भले धर्मात्मा जीवों को सारा संसार जानता है। और धर्मात्मा जीव का संसार में यश व उपकार धर्म की भांति चारों और फैलता है धन की सफलता दान आदि शुभ कामों में खर्च कर देने से होती है। जो जीव धन को धर्म में खर्च करता है वह जीव ही संसार में धन्य होता है। ऐसा जीव सुखों की सामग्री स्वरूप उत्तम स्थान को प्राप्त होता है। अतः दान, धर्म करो और अपना जीवन सुखमय बनाओ॥ ६५॥

दोहा –

निन्दै लोक हमको भया, कहो कहां विगराय।
निन्दाभय जो उर लहै, दोए द्रव्य धर जाय॥ ६६॥

- सूंम वचन

अर्थ - मूर्ख कहता है कि यदि हमें निन्द लोक भी प्राप्त होता है तो बताओ

कि वह हमारा क्या बिगाड़ कर सकता है ? जो अपने हृदय में निन्दा का भय रखता है। उसके घर में द्रव्य नहीं रह पाता है। घर से द्रव्य निकल जाता है ॥ ६६ ॥

सवैया (३१) –

जीवना हमारो वृथ कहो क्यों नै सवै लोक,
निंदा कीए भैया कोऊ आयु न घटाय जू।
होय माल छाती व लितो तो हीए पुरी रहै खाए,
बिन खुशी सदा जीव न लुंथाय जू॥
माता सुत पिता नारि का के दुख सीरी है,
आप न कुमावो ओर भलैं भलै खाय जू।
चाहै द्रव्य मेरो मो जीवत कहूँ दाम एक,
उनकौं न देऊं तो तो दान को कराय जू॥ ६७ ॥

अर्थ - हमारे जीवन की तुम व्यर्थ क्यों सारे लोक में निन्दा करते हो। अरे भैया ! लोक में यदि कोई हमारी निंदा करता है तो करता रहे, उससे मेरी आयु तो कम नहीं हो जाएगी। माल पास में रहने से ही हृदय खुशी से परिपूर्ण रहता है और खाए बिना ही धन देखते रहने से ही जीव सदा सुखी बना रहता है। और माता, बेटा, पिता, नारी इन्हें किस बात का दुख है सब अपना-अपना कमाओ और अच्छा-अच्छा खाओ। मेरा द्रव्य मैं अपने जीवन में किसी को न दूँगा। देखता हूँ मेरे द्रव्य को कौन दान करता है ? ॥ ६७ ॥

दोहा –

देय दान फल जगत में, श्रेयांस नृप सोय।
तिस ही भव शिव को लहि कहे ओर फल कोय ॥ ६८ ॥

-दाता वचन

अर्थ - दातार दान के माहात्म्य को बताते हुए कहते हैं कि देखो राजा

श्रेयांस अपने द्वारा दिये गये दान से संसार में दानवीर के नाम से ख्याति प्रसिद्ध हो गया और अन्त में उसी भव से मोक्ष को प्राप्त किया। यह सब दान का ही फल जानों। तुम जिस उत्तम पात्र को दान देते हो उसी के समान बनने की भावना सदा भाते रहना चाहिए। ऐसी भावना भाने से ही अनंत कर्मों की निर्जरा होती है॥ ६८॥

अडिल्ल छंद –

दान तनी अनमोद जीव मन में करी,
सिंध सूर कपि नवल देय अति सुख भरी।
ता फल आरज्य होय सुरग नर शिव भए,
सो तू सुनि निजकानि क्रिपण चित दुख ठए॥ ६९॥

अर्थ - दान को देने वाले कि जिसने मन से अनुमोदना की ऐसे सिंह, सूकर, बंदर और नेवला ने अगले जन्म में तीर्थंकर के पुत्र होकर अक्षय अनंत सुख को प्राप्त किया। वज्रजंघ को आहार दान देते हुए देखकर उक्त चारों तिर्यंच गति ने जीवों ने स्वर्ग के सुखों को भोगकर फिर मनुष्य बनकर मोक्ष सुख प्राप्त किया। इस बात को सुनकर किरपण अपने मन में अति दुखित हुए॥ ६९॥

दोहा –

श्रेयांस दे दान कौं, शिव कौं लई सयांन।
हम विन दीने दान कौं, तिष्टेंगे दुख थान॥ ७०॥

- सूंम वचन

अर्थ - सूंम बोला कि राजा श्रेयांस ने दान देकर मोक्ष सुख को प्राप्त किया और हमने दान को नहीं दिया सो बहुत ही दुखों से युक्त स्थान को अर्थात् नरक को प्राप्त होगें॥ ७०॥

सवैया इकतीसा (३१)

ताकौं शिव चही एसो घर कौं लुटावो,

वीर देखो भल दान घनी दया चित्त धारि जू।
चाहो सुर लछि लोभ ताको करि दान देहु,
जसके निमत्त द्रव्य दे, क्यों न डारि जू।
हमकौं कहोज ऐसे लोभ न की जुक्ति लाय,
चहिए नहीं मोक्ष सुर्ग जस कोन भारि जू।
एक वेर कही सोतो लाख वेरि जांनि लेहु,
देहूं नहीं दाम भावै आवरू बिगारि जू॥ ७१ ॥

अर्थ - जिसे मोक्ष प्राप्ति की चाह हो, सो अपने घर को लुटवा देते हैं। और भले प्रकार से दान और दया को हृदय (चित्त) में धारण करते हैं। जो तुम स्वर्ग के सुख का लोभ देकर यश के निमित्त से द्रव्य को क्यों न दे डालते हो ? जो तुम हमें स्वर्ग, मोक्ष और यश आदि का लोभ देकर धन का दान दिलाना चाहते हो सो इस युक्ति से भी हम धन को दान में नहीं देगें। हमें उस यश, स्वर्ग और मोक्ष के सुख जरूरत नहीं है। यह बात हमने आपसे एक बार कह दी, इसे लाख बार कहने के बराबर मान (जानना) अब आप अपने भावों को मत बिगाड़िये, मैं एक दाम भी दान में नहीं दूँगा। मेरी चमड़ी चली जाय लेकिन मैं एक दमड़ी को जाने नहीं दूंगा॥ ७१ ॥

दोहा –

ऐसे इच्छत वचन कूं, मति काढ़ो बुधिवान।
सोचि देय या वचन कौं, है बहु दुख की खानि॥ ७२ ॥

- दाता वचन

अर्थ - दातार कहते हैं कि हे बुद्धिमान इस प्रकार के खोटे इच्छित वचन अपने मुख से मत निकालो, ऐसे वचन बोलने से तो बहुत ही दुख प्राप्त होता है। ऐसे खोटे वचन संपूर्ण दुखों की खान है। कहा है - "गोली का घाव भर जाता है लेकिन बोली का घाव नहीं भरता" इसलिए कवि ने कहा - दोहा - वाणी

ऐसी बोलिए मन का आपा खोय। औरन को शीतल करे आपहुँ शीतल होय॥

अर्थात् - सबसे ऐसी वाणी बोलना चाहिए कि जिस वाणी से दूसरों का और अपने का भेद ही खत्म हो जाय। स्वयं को दूसरों की शीतलता (शान्ति) को देने वाली वाणी बोलना चाहिए॥ ७२॥

गीता छंद –

श्रुति कहै जग सव चपल चपला जे मथिरता ना धरै।
कण एक भी नहीं लार चालै भोमि में घर नो परै॥
फिरि गमत तामैं होय ताफलि ध्यान आरित थाय जी।
तब जीव अशुभ परिणाम सेती थांन दुरगति जाय जी॥ ७३॥

अर्थ - दातार कहता है कि यह सारा संसार बिजली की चमक के समान चंचल है अर्थात् सारे संसार व समस्त पदार्थों में स्थिरता नहीं है, अस्थिर है। संसार का एक कण भी अगले भव में साथ जाने वाला नहीं है। यह सब धन, मकान, पुत्रादि यहीं भूमि पर ही रह जाने वाला है। ऐसे नश्वर वैभव, धन आदि में लीन होकर क्यों आर्त्त, रौद्र ध्यान को कर रहा है। इन खोटे ध्यान व खोटे अशुभ परिणाम से दुर्गति को क्यों प्राप्त होता है। अर्थात् अशुभ परिणामों से ही यह जीव दुर्गति में जाता है। पं. दौलतरामजी कहते हैं - 'अति संक्लेश भाव तें मर्‌यो, घोर श्वभ्र सागर में पर्‌यो'। अर्थात् जो संक्लेश परिणामों से मरण को प्राप्त होता है वह मरकर निश्चित सागरों पर्यंत की आयु वाले नरक गति को प्राप्त होता है। अतः ऐसे खोटे परिणामों का त्याग करना ही अपनी आत्मा के लिए हितकारी है॥ ७३॥

दोहा –

लापर के मुख·में मिलै, सुरग नरक के थान।
ज्यों-त्यों जुगति बनाय के, करै दरव्य की हान॥ ७४॥

- सूंम वचन

अर्थ - झूठे वचनों को बोलकर प्राणी अपने नरक के द्वार को खोल लेता है। जैसे - राजा वसु व पर्वत राजा। और सत्य रूप वचनों को बोलकर अपने स्वर्ग के द्वार को खोल लेता है। जैसे - नारद। कंजूस व झूठा प्राणी ज्यों-त्यों कर अपनी खोटि बुद्धि के द्वारा अपने द्रव्य की हानि कर लेता है। और मरकर दुर्गति में चला जाता है। तुम जैसे तैसे करके मेरे धन का नाश करना चाहते हो ॥ ७४ ॥

सवैया (३१)–

सुरग के गए कोऊ कही नहीं हमें आय,
तातैं हम जांनै सांच दांन सुख दायरे।
विना दीए पाप ठांनि नर्क दुख भाखत,
सबसो भी कोऊ दुखी होय कहे नहीं आयरे।
तातै द्रव्य होय पासि सो ही सुरथान भैया,
विन दाम जीव मोहि नरक कहाय रे ॥
ऐसी परतीति घनी गाढी करि राखी हम,
तेरी बात देनो दान कौन चित लाय रे ॥ ७५ ॥

अर्थ - स्वर्ग में गये हुए जीवों में से अभी तक एक ने भी आकर ऐसा नहीं कहा कि हमने दान दिया था इसलिए हमें स्वर्ग के सुख प्राप्त हुए हैं। और किसी नारकी जीवों में से भी एक ने भी आकर यह नहीं कहा कि हमने दान के न देने से ही नरकगति को प्राप्त किया है। इसलिए भैया संसार में द्रव्य पास में है सो ही स्वर्ग है और बिना दाम के प्राणी को नरक कहा है। अर्थात् द्रव्य के पास रहने से ही प्राणी को स्वर्ग के जैसा मानता है और द्रव्य (दाम) के बिना संसार मेरे लिए नरक है। ऐसा हमारा अनुभव है, इसलिए हमने धन को भूमि में गाड़ कर रखा है। इसलिए दान को देने वाली तेरी बात को कौन मानता है अपने मन में भी नहीं लाता है। तुम्हारी कपोल कल्पित बातों को कौन चित्त मैं धारण करेगा ? अर्थात् कोई भी नहीं। मैंने धन को गाड़ कर रखा है ॥ ७५ ॥

दोहा –

दीरघ या जग वास तू, करि है जीव अयान।
वचन वानि जिन देव को, धर तन ही उर थान ॥ ७६ ॥

– दाता वचन

अर्थ - दान के बिना यह जीव संसार में ही दीर्घकाल तक वास करता है अर्थात् दान धर्म के बिना यह जीव बहुत काल तक संसार में बार-बार जन्म लेकर संसार में वास करता है। ऐसे श्री जिनेन्द्र देव के वचन है। अतः जिनवाणी के इन वचनों को अपने हृदय में धारण करो। और जिन वचनानुसार आचरण करो तो निश्चित रूप से संसार भ्रमण का अन्त हो जायेगा और सदा के लिए सुखी हो जायेगें ॥ ७६ ॥

गीताछंद –

भव्यदान ही तैं सुरगसिव होय दान ही तैं जस मिलै।
अरू दान ही धर्म चहन मोक्ष है धर्म तै परगट मिलै।
विन धर्म जीव बहु अजस दुख लेवानि जिन फुनि फुनि कहै।
तातैं जुमांनो सीख हित दान कुंवहु द्रव्य ठहै ॥ ७७ ॥

अर्थ - संसार में भव्य जीव दान के द्वारा ही इस लोक में जस पाता है और दान से ही परलोक में स्वर्ग और मोक्ष को प्राप्त होता है और दान ही धर्म है, दान से धर्म प्रगट होता है। बिना धर्म के संसार में जीव बहुत ही अपयश को प्राप्त हो बार-बार दुख ही दुख को पाता है, ऐसा जिन देव पुनः पुनः कहते हैं। इसलिए मेरी मानों तुम्हें हित की शिक्षा देते हैं कि द्रव्य को दान के निमित्त से दोगे तो द्रव्य ठहरेगा वरना समाप्त हो जायेगा। अतः हे भव्य दान करने से दाता और पात्र दोनो कषायों से जितने अंशों में दूर होते जायेगें। उसके अनुसार यह प्राणी स्वर्ग मोक्ष के सुखों को प्राप्त कर सकेगें ॥ ७७ ॥

सोरठा –

जा विधि कहत सयांन, सो सव जानत रह सिमैं ।
तुम कहो हमकौं दान, सो मो मन अवे नही ॥ ७८ ॥

- सूंम वचन

अर्थ - जिस प्रकार से तुम ज्ञान की बात को कह रहे हो सो उसे मैं सब प्रकार से जानता हूँ। और तुम हमसे कहते हो सो मेरे मन में दान करने की बात आती ही नहीं है। ऐसा सूंम कहता है। तुम जो कहना चाहते हो सो मैं उस रहस्य को अच्छी तरह से समझ रहा हूँ ॥ ७८ ॥

सवैया (३१) –

अबलौं तो प्राण धारि दान कभू दीयो नांहि,
एक सी निभाई विधि भए अवैं आय जू ।
ओर जग मांहि जीव के उर तप धारत है,
मेरे एहि वृत कभू दान न कराय जू ॥
ऐसी परतज्ञा मेरी राखी भगवान भैया,
अबलौं तो चली फेरी साहि बतलाय जू ।
कोऊ कहें दान विना सफल देह नहीं होय,
सो तो मेरे वृत तनों मैं भी कछू पाय जू ॥ ७९ ॥

अर्थ - जब से मैने प्राणों को धारण किया है तब से आज तक कभी दान ही नहीं दिया मात्र धन को जोड़ा ही है तब कहीं अब धन की वृद्धि कर पाया हूँ। इस जग से उब कर कोई तो तप को धारता है लेकिन मेरे अब यही व्रत है कि मैं कभी भी दान नहीं करूँगा। ऐसी दान न देने की प्रतिज्ञा की लाज अभी तक तो भगवान ने रक्खी है, और आगे भी यही प्रतिज्ञा चलती रहेगी। कोई कहे कि दान के बिना

धन व नर तन सफल नहीं होता है। सो मेरा तो दान न देने का व्रत है। अतः मेरे से तो कुछ पा ही नहीं सकता है ॥ ७९ ॥

दोहा –

अरे भव्य या जगत में, फल विन किरीया नांहि।
फल तेरे वृत को भैया, भुगतैं ही वनि आहि ॥ ८० ॥
- दाता वचन

अर्थ - अरे भव्य जीव इस संसार में प्रत्येक क्रिया का कुछ न कुछ फल अवश्य मिलता है। क्रिया को करने के बाद उसका कोई फल न हो ऐसा त्रिकाल में हो ही नहीं सकता। क्रिया जैसी भी पुण्य-पाप रूप होगी, उसी रूप उसका फल होगा। और जो तूने दान देने का त्याग रूप व्रत को लिया है। इसके दुख रूप फल को भोगते-भोगते दुखों का अन्त इस पर्याय में आ नहीं सकता ॥ ८० ॥

जोगी रासा छंद –

विगर ज्ञान वृत तुम नैं धारे यो विना दान को भाई।
ओर वरत जग में बहु देखे तुम सो वृत न लिखाई।
पाप त्याग वृत तो श्रुति गाए धर्म त्याग वृत तेरो
या फलि आय उदैत वहो है मही मिटि है भव फेरो ॥ ८१ ॥

अर्थ - बिना ज्ञान के जो तूने व्रत लिए हैं सो भैया बिना दान के कुछ सुख नहीं होगा और संसार में हमने बहुत से व्रत देखे, पढ़े व सुने हैं परंतु तुम जैसा व्रत हमने शास्त्रों में लिखा हुआ नहीं पढ़ा है। पाप के त्याग रूप व्रत को तो जिनागम में आचार्य भगवंतों ने गाया है, लेकिन तेरा जो धर्म का त्याग रूप व्रत है। उसे कभी किसी जिनवाणी में नहीं कहा है। तेरा जो दान देने का त्याग रूप व्रत है, इससे बंधने वाले कर्म का जब उदय काल आयेगा उस कर्म के कारण तेरे भव भ्रमण का कभी अन्त आने वाला नहीं है। "भव धरि धरि मरयों अनन्त वार"

इस प्रकार तो सूंम तुझे संसार में बार-बार जन्म लेकर मरना पड़ेगा। संसार में प्राणी को सबसे बड़ा दुख जन्म और मरण का ही होता है। इससे बड़ा दुख और कोई दूसरा न था, न होगा॥ ८१॥

सोरठा –

ज्यों चाहे त्यों वीर, समझि लेहु हिरदै विषै।
गो चित्त वृत दिढ़ धीर, चाहै सो फल ऊपजो॥ ८२॥
- सूंम वचन

अर्थ - सूंम कहता है कि तुम मुझे जैसा चाहे वैसा समझ लो अपने हृदय में। मेरा मन लिए हुए व्रत में दृढ़ता बांधे हुए है। उसका जो भी जैसा फल होगा सो भोग लेगें। व्रत का भंग करना भी महापाप का कारण है। और व्रत को भंग स्वयं करे या दूसरों से भंग करावे दोनों को ही एक हजार मन्दिरों को तोड़ने का महा पाप का आस्रव होता है॥ ८२॥

सवैया (३१) –

वरत दान के सुने हैं अनेक तैंने गाए,
फुनि आगम में सब ही कराय जू।
नाहि अनोखो वृत ताकौं करि सकै कोय,
आगम में नांहि कीए संकट बहु पाय जू॥
ऐसो वृत नो तम हम धारयो है वीर यह,
काय जाय तोहू दान देनो नहीं भाय जू।
यह द्रिढ़ वृत मेरे धार्‌यो निसंक होय यामें,
नहीं संक देव नारकी कराय जू॥ ८३॥

अर्थ - दान देने के तो अनेकों व्रत सुने हैं तुमने भी आगम के द्वारा कहे व्रत

भी कराये हैं। दान न देने का यह भी एक अनोखा व्रत है। इसे कोई नहीं कर सकता। आगम में भी ऐसा व्रत नहीं कहा कि दान न देने के व्रत से बहुत संकट आते हैं। ऐसा उत्तम व्रत हमने धारण किया है वीर! यह मेरी काय (शरीर) जाय तो चला जाय परन्तु दान देना नहीं भाता है अर्थात् दान देना मुझे पसंद नहीं है। यह व्रत मैंने दृढ़ता से निशंक होकर धारण किया है। इस व्रत में शंका नहीं है कि देव बनूँगा या नारकी बनूँगा। यह चिन्ता मुझे नहीं है। तो तुम मेरी चिन्ता क्यों करते हो आप अपनी चिन्ता करो हमारी चिन्ता को छोड़ो॥ ८३॥

दोहा –

धन्य धन्य तो गाढ़ कौं, लयो पाप चित्त चाहि।
ऐसो जो धर्म द्रिढ़ करे, तो क्यों नहीं सुख थाहि॥ ८४॥

- दाता वचन

अर्थ - तू भी धन्य है-धन्य है कि धन को गाड़ रखा है और अपने मन में पाप भाव लाया है ऐसे ही जो तुम धर्म में दृढ़ होते तो क्यों न तुझे सुख का स्थान स्वर्ग मोक्ष प्राप्त हो जाता। यह वचन दाता के हैं। इस प्रकार के व्रतों को ग्रहण करने व पालन करने से निश्चित ही संसार भ्रमण का व दुःखों का अन्त नहीं आ सकता है। सुखाभास सुख भी प्राप्त नहीं कर सकता है॥ ८४॥

गीता छंद –

मैं कहूं हुलसाय रजीय अति जगत है चंचल सही,
जो कभू तेरे धर्म रूचि होय तो लहे सिव सुरमही।
तातैं जु तो कौ कहौं हठ करि धर्म द्रिढ़ मन लाय जी।
दे दान द्रव्य सो गैल चलि है ओर सब वृथ थाय जी॥ ८५॥

अर्थ - मैं तो कहता हूँ उतने में ही मेरा जीव (आत्मा) हर्षित होता है। अरे यह संसार तो बिजली के समान चंचल है कुछ भी स्थिर नहीं है। जब कभी तेरे

को धर्म रूचने लगेगा तब ही तुझे स्वर्ग मोक्ष के सुखों का अनुभव प्राप्त होगा। इसलिए दान न देने रूप व्रत में जितनी दृढ़ता है उतनी ही दृढ़ता अपने सच्चे धर्म में मन में स्थिर हो जाय तो दान देने लग जाय। धर्म मार्ग पर चलने से सुख प्राप्त होता है। वरना यह मानुष तन वृथा भोगों में ही समाप्त हो जाएगा। फिर पछताते रह जाओगे ॥ ८५ ॥

दोहा –

जो तुम हित हम चहत हो, अरज सुनो इक वीर,
दान देन वच वज्र सम, भूलि न कहो गंभीर ॥ ८६ ॥

- सूंम वचन

अर्थ - सूंम कहता है कि जो तुम मेरा हित करना चाहते हो तो मेरी एक बार एक अरज (विनती को) सुनो। तुम जो दान देने के वचन हमसे कहते हो, सो ऐसे वचन हमसे मत कहो क्योंकि तुम्हारे वह वचन मुझे मेरे ऊपर वज्र गिरने के समान दुःख रूप लगते हैं इसलिए ऐसे वचन मुझसे भूलकर भी मत कहना ॥ ८६ ॥

सवैया (३१) –

सारे वच हमकों तुम कहो सो कबूलि भैया,
चाहै लगावो दोष खेद नहीं आय जू।
कहो सो ही करै भार सिर पै उठावैं घनो,
घनी दूरि जाय काम करैं मन लाय जी ॥
कहें मुख वैन सो ही घनें दीन होय सदा,
विनै जुत रहै भलो सब को मनाय जी।
इत्यादिक स्यांनफ की कहो सिर मेरे पै,
एक दाम लगै सो ही वात न सुहाय जी ॥ ८७ ॥

अर्थ - तुम हमसे जो भी कबूल करवाना चाहो, करवा लो, और जो भी दोष तुम हमें लगाना चाहो सो दोष लगा देना, हम उसका रंच मात्र भी बुरा नहीं मानेगें, दुःख महसूस नहीं करेगें। और जो कुछ भी वजनी से वजनी भार सिर पर रखकर ढ़ोना हो सो भी ढ़ो लेंगे कितनी ही दूर क्यों न ले जाना हो वह सब काम हम मन लगाकर कर देंगे। अपने मुख से भी बहुत दीनता के वचनों को कह सब की विनय कर मना लूंगा। इत्यादिक सब कर लूंगा परन्तु दान देने वाली बात तो मेरे सिर से निकल जाएगी अर्थात् दान करने की बात कहते रहो उसका मुझ पर कुछ भी असर नहीं होगा। दान देने वाली बातें मेरे को सुहाती नहीं है॥ ८७॥

दोहा –

दान देन तोकों भव्यक, अब तो नांहि सहाय।
फल लागै पर भव तवैं, वह फल तज्यो न जाय॥ ८८॥
- दाता वचन

अर्थ - भव्य जीव ही दान दे पाता है, इस संसार में अब तो एक दान ही तरने के लिए सहारा है, जो इस भव के साथ-साथ पर भव में भी साथ जाएगा। दान का फल कभी भी फल दिये बिना नाश को प्राप्त नहीं हो सकता है। उत्तम दान, उत्तम फल, मध्यम दान मध्यम फल और जघन्य दान जघन्य फल पाता है। विधि दाता व पात्र में विशेषता होने से भी दान व दान के फल में विशेषता आ जाती है॥ ८८॥

अडिल्ल छंद –

दान देन सुख काज राज सुख मय लहै,
जग वलभ यह काज दया उर मैं रहे।
कर नातैं भव सफल फलै सिव सुर कह्यो,
तातैं जिन धुनि धारि मान गुर को चयो॥ ८९॥

अर्थ - यह जीव दान के फल से इन्द्रिय सुख व राज सुखों को प्राप्त करता

है संसार में शरीर बल मिलता है। दान के साथ दया को भी अपने हृदय में धारण करना चाहिए। अपने हाथों से दान देकर इस नर भव को सफल बनाओ। दान के फल से प्राणी को स्वर्ग मोक्ष का फल प्राप्त होता है इसलिए जिनवर ने अपनी दिव्य ध्वनि में कहा है और उसके अनुसार गुरूवरों ने बताया है। संसार में यह जीव आहार दान के फल से उत्तमोत्तम भोगों को पाता है, औषध दान के फल से निरोग व उत्तम संहनन को पाता है और ज्ञान दान के फल से केवली, श्रुत केवली का पद पाता है और अभय दान के फल से दीर्घ आयु को प्राप्त होता है। दान का ऐसा फल जानकर स्वयं भी दान में प्रवृत्ति करे और दूसरों को बढ़ाने में प्रवृत्ति करने के लिए प्रेरणा देनी चाहिए॥ ८९॥

सवैया (३१) –

तेरे कहे कहै तो तपस्या बहु भांति करौं दीन,
होय बोलुं श्रुति निति की सुनि जाऊं जी।
विना पुहचारै निति दर्शन को नेम राखुलो,
कनके देख ने कुं भावन निति भाऊं जी।
और देह दान ताकी बहु ती अनमोद करो,
वार वार वाकि परसंसा करि आऊंजी।
एती तो कबूलि उपदेश तेरो मान्यो सर्वै,
द्रव्य देहि दान यह चित्त मैं न ल्याऊँ जी॥ ९०॥

अर्थ - सूंम कहता है - तेरे कहने से मैं बहुत प्रकार के तप को धारण कर लूँगा, दीनता पूर्वक स्तुति को बोल दूंगा। बिना द्रव्य चढ़ाये दर्शन करने का नियम ले लूँगा। दूसरों को दिखाने के लिए रोज अच्छी-अच्छी भावना को भा लूँगा और दूसरों के द्वारा दिये गये दान की भी बहुत अनुमोदना को भी व दानी की प्रशंसा को भी बार-बार कर दूंगा। उक्त सारी बातों को कबूल (कह दूँ) कर

लूंगा। यह सब तुम्हारे उपदेश को अच्छी तरह से मान लूंगा। बस द्रव्य को दान में देने का उपदेश मेरे चित्त में नहीं जम पायेगा, इसलिए दान को देने का नाम नहीं लूंगा। बल्कि दूसरा कोई हमें दान दे तो मैं लेने के लिए कभी पीछे नहीं हटूंगा। लेकिन दान दूंगा नहीं ॥ ९० ॥

दोहा –

गुरू तोता कों कहत जग, सुखदा वचन सुनाय।
धनखोवन वच दान के, कहै सुगुर का मथाय ॥ ९१ ॥
- सूंम वचन

अर्थ - गुरू तो तुम्हे और सारे जग को सुखी बनाने वाले वचनों को सुनाते हैं। धन को पाकर उसका दान करो और वचन से भी दान की प्रेरणा करो यही सच्चे गुरू के वचन हैं। संसार में दान से सब तरह के सुख देने वाली सामग्री सदा प्राप्त होती रहती हैं दान से दान लेने वाले पर उपकार होता है, उस उपकार को करने से दान लेने वाला अपने पर भी अनेक प्रकार से अनेक बार उपकार करता रहता है ॥ ९१ ॥

सवैया (३१) –

गुरन कौं पूजैं गुर देय द्रव्य घनों भैया,
ताको वैंन मांनै हमै सबैं पर मान जू।
खान पान आभूषण वस्तर अनेक भांति,
गुर ही पैं पावैं गुरू तेई सुख थान जू।
ऐसे गुर कौन काम खोवैं द्रव्य दान ठाम,
घर के डुबैया दया नहीं तिन जान जू।
तातैं भैया ताकी हम मानत है बात भली,
दान न बतावैं दाम नासिक भयांन जू ॥ ९२ ॥

अर्थ - गुरुओं को पूजने से गुरु गुणों को देते हैं, गुरु जो कुछ भी कहते हैं वह सब हमें प्रमाण भूत है। और खाने-पीने रूप सामग्री व समस्त प्रकार के वस्त्रा भूषण आदि अनेक प्रकार के भोगोपभोग की सुखरूप सामग्री गुरु के ही प्रभाव से प्राप्त होती है। और ऐसे गुरु भी किस काम के जो हमारे द्रव्य को दान में दिलाकर हमारे घर-परिवार की जीवन नैया डुबो दे। ऐसे गुरु के हृदय में दया कहाँ है ? अर्थात् दान में द्रव्य को खर्च करवाने वाले गुरु तो निर्दयी होते हैं। इसलिए भैया आपकी सब बात हम मानते हैं, दान देना भली बात है परन्तु इस प्रकार से धन का नाश हो जाएगा तो फिर धन कहां से आयेगा॥ ९२॥

दोहा -

अरे जीव बिन ज्ञान ए, आतम घातक वैन।
कहै विचार न कछू करैं, या फल है दुख दैन॥ ९३॥
- दाता वचन

अर्थ - अरे भव्य जीव बिना ज्ञान के वचन को बोलने से आत्मा का अर्थात् आत्म गुणों का घात होता है। ज्ञान का अभाव होने से विचार भी हित अहित के निर्णय से रहित होते हैं और क्रिया भी सुख देने के बजाय दुःख रूप फल देने वाली हो जाती है। इसलिए ज्ञान के सद्भाव में विचार और क्रिया दोनों ही सुखद होती है। ज्ञान की शोभा आचरण से है और आचरण की शोभा ज्ञान से होती है॥ ९३॥

चौपाई -

आपा पर हित समझैं नांहि, दान तनो फल सूझे कांहि।
दान महंत पुरूषन को काम, दान कहां दे दीन कुनाम॥ ९४॥

अर्थ - जिसे अपना हित और दूसरों के हित का ज्ञान (समझ) नहीं है उसे दान का क्या फल होता है उसे वह नहीं जान पाता है और दान देना तो महान

पुरुषों का काम है न कि दीन-हीन पुरुषों का काम है। दान देना भी तो वीरों का ही काम है। कायर लोग कभी भी दान आदि कार्य नहीं कर सकते हैं॥ ९४॥

दोहा –

दान देय चित कठनि को, द्रव्यतैं मोह न जास।
मोहि मैं नहीं दान द्यौं, क्यों न हो हित ननास॥ ९५॥

- सूंम वचन

अर्थ - दान देने की इच्छा मन में होना कठिन बात है। मोही प्राणी को धन से मोह होता है, इसलिए वह धन को दान में नहीं देता है। जिस प्राणी को धन के प्रति मोह दूर हो गया है लोभ कषाय छूट गई है, वही दान देता है। जिसे धन से मोह बना हुआ है वह क्या दान देगा ?॥ ९५॥

सवैया (३१) –

घनो कष्ट खाय कैं कुमायो द्रव्य दीन होय,
लज्या सब टारी भली सरम गुमाय रे।
देस देस फिरयो स्वांग बदले अनेक रूप,
दाम दाम जोर भैया कोरे चनै खाय रे।
राह में अनेक चोर भूत वैताल देव,
सब ही मनाए वीर सीस को नमाय रे।
इत्यादिक घने घने कष्ट खाय सांच्यो द्रव्य,
तेरे बहु राए दान को ऊन कराय रे॥ ९६॥

अर्थ - सूंम कहता है कि मैंने धन को कमाने में बहुत ही कष्ट उठाये हैं, दीन हो, लज्जा को छोड़ निर्लज्ज बना और शरम को छोड़ बेशरम बनकर धन कमाया, देश-देश में घूम-घूम कर नाना प्रकार के रूपों को धारण किया। घर-

घर, दुकान-दुकान घूम बहुत प्रयत्न से धन को जोड़ा है। अरे भैया ! इस धन को मैंने सूखे चने खाकर पेट भर कर जोड़ा है। रास्ते में भी अनेक प्रकार चोरों से, भूतों से तथा अनेक प्रकार के देवों के आगे हाथों को जोड़-२ कर शीश को झुका-झुका कर धन को बचाया है। इत्यादिक अनेक कष्टों को उठा-उठाकर द्रव्य का संचय किया है और धन को बढ़ाया है। अब तुम्हारी ताकत हो तो तुम्ही दान देकर दान की वृद्धि को करो। लोगों के सामने भूत-प्रेत का भी भेष बनाकर लोगों को भय दिखाकर उनके धन को लूटा है। कभी देवी-देवता का रूप बना झूठी भविष्य वाणी बता, कभी आकाशवाणी करके डर दिखाते हुए राहगिरों से छुपकर बोला कि अपना आधा माल यहीं छोड़कर जाओ किसी को सोना, चांदी के आभूषण बनवाकर चढ़ाओ वरना सर्वनाश का भय दिखा धन को हरा है॥ ९६ ॥

दोहा –

तोसे सठ किरपण बुधि, उपजे आंगु जोरि।
तन नागे उर भूखि सहि, गए माल सब छोरि॥ ९७ ॥
- दाता वचन

अर्थ - दातार कहते हैं कि तेरे जैसे मूर्ख बुद्धि के धारी आगे जो उत्पन्न होगें, वह शरीर नग्न तथा भूखे पेट रहने वाले होंगे। और जैसे अभी सारे जीवन भर कमा-कमा कर जोड़-जोड़ कर रख कर मर गये। ऐसी ही स्थिति उन मूर्ख जीवों की होगी। इसलिए धन को दान धर्म में लगाकर अपने को कषाय व पापों से बचाकर आत्म शुद्धि करना चाहिए। तभी अपनी आत्मा परमात्मा बनेगी॥ ९७॥

अडिल्ल छंद –

यह द्रव्य पुण्य को स्वांग महा सुख दायरे,
तोहि में अति हीन कहा होय जायरे।
पाप उदय में मूढ़ धर्म कहा सेय है,
तातै दे अब दान पुण्य बहु लेय है॥ ९८ ॥

अर्थ - संसार में पुण्योदय से अनेक प्रकार के स्वांग को धारण कर कोई चक्रवर्ती है, तो कोई राजा, महाराजा है। महासुखों को प्राप्त करता है। और किसी को न जाने क्या हो जाता है कि वह धन को पाकर उसमें ही आसक्त हो जाते हैं और फिर मर कर नरकों में चले जाते हैं। पाप कर्म के उदय से यह मूर्ख प्राणी धर्म का सेवन नहीं कर पाता है, हित अहित का विचार भी नहीं कर पाता। जिससे वह मरकर अनेक दुःखों को उठाता रहता है। इसलिए भैया अब दान देवो, धर्माचरण करो बहुत सा पुण्योपार्जन कर अपने जीवन को सुखमय बना सद्गति को पा परमात्म पद की प्राप्ति करो॥ ९८॥

दोहा –

किरपण बुधि हम से जगत, आगैं भए सियान।
तिन को अब लौं नाम भू, चल्यो जाय जग जांग॥ ९९॥

- सूंमवचन

अर्थ - इस संसार में मेरे समान किरपण बुद्धि जीव बहुत हुए हैं। आगे हम जैसे जीव न हो। ज्ञानवान होवे। संसार में मूर्ख जीव और ज्ञानवानों का नाम इस भूमि पर सदा चलता ही रहता है। संसार में ज्ञानी व मूर्ख (अज्ञानी) दोनों की कभी कमी पड़ने वाली नहीं है। कर्मों के उदय से प्राणी ज्ञानी व मूर्ख होते रहते हैं। आज जो ज्ञानी है वही पापोदय से अज्ञानी हो जाता है। पुण्योदय से अज्ञानी भी ज्ञानी हो जाते हैं॥ ९९॥

सवैया–

हम ने दियो दान कभू दीयो न हमारे तात,
पीढ़ी दर कुल मांहि ऐसै चलि आय जू।
तेरे कहें दाय देय कुल कुल जावै कहा,
हम ही कपूत कहा जग में कहाय जू।

तातै भैया बिना दान माल सब जाय वृथ न,
कथा न होय सबै आरे धराय जू।
करि है तो सो ही भैया चली कुल मांहि,
आई निंदो या बंदो दान दाम न कराय जू॥ १००॥

अर्थ - सूंम कहता है कि न तो हमने कभी दान दिया, न हमारे पिता व भाई ने ही दिया, हमारे कुल में पीढ़ी पर पीढ़ियाँ बिना दान दिये ऐसी ही चली आ रही है। तेरे कहने से यदि दान दे दूँ तो हमारे कुल में हमें कपूत कहा जावेगा। हमारे कुल की परंपरा ही बदल जायेगी। हमारे कुल में अकेले हम ही कपूत उत्पन्न नहीं हुए। हमारा कुल ही ऐसा हुआ है। इसलिए बिना दान दिये सारा माल ही वृथा चला जायेगा। फिर न हम रहेंगे न हमारी कथा ही रहेगी सबका सब ऐसे ही धरा रह जाएगा॥ १००॥

दोहा –

कुल में जो पापी भए, तो बुधि पाप न लाय।
बड़े भीख मांगत भए, तो कहा धनी मंगाय॥ १०१॥
- दाता वचन

अर्थ - किसी कुल में यदि कोई पापी जीव पैदा हो गया तो जरूरी नहीं है कि सबकी बुद्धि पाप रूप हो जाय। अर्थात् पापी कुल में सभी पापी नहीं होते हैं। घर में बड़े भीख मांगते हैं। तो ऐसे भीख मांगकर धनी कहलाना क्या काम का है॥ १०१॥

गीता छंद –

जग मांहि पंडित सोय सुखदा काम होय सो ही करे,
कुल मांहि होय मति होय भावै पाप तीज पुण्य अनुस्वरे।
तातै जु भव्य हठ छांडि उर का पाय द्रव्य पुण्य कीजिए,
बिन दान द्रव्य सेव विफल जाय है क्यों नया फल लीजिए॥ १०२॥

अर्थ – संसार में पंडित वही है जो सुख रूप काम को करे। कुल में कोई पुण्य करे या न करे लेकिन अपने पापों को भावों न लावें और पुण्य का ही अनुशरण करना चाहिए। इसलिए हे भव्य ! अब तू अपनी हठ (जिद्द) को छोड़ और अपने द्रव्य का दान कर। क्योंकि बिना दान के सारा द्रव्य विफल (निष्फल) है। तूने जो पूर्व भव में पुण्य किया था सो इस भव में बहुत सा द्रव्य प्राप्त कर लिया और यदि अब नया पुण्य नहीं करेगा तो फिर नया फल क्या प्राप्त करेगा ॥ १०२ ॥

दोहा –

अरे कौन रिप पीठि तू, परयो हमारे यार।

चाहे चब सिर लायले दान वचन परहार ॥ १०३ ॥

- सूंम वचन

अर्थ – सूंम कहता है कि अरे तुम हमारे दुश्मन बन कर हमारे पीछे क्यों पडे हो ? चाहे जब मन आता सो धन दान की चर्चा को छेड़ देते हो। हमारा दान के संबंधी वचन सुनने का ही परिहार है। मुझे दान करने की चर्चा को नहीं सुनना ॥ १०३ ॥

सवैया (३१) –

सह नो सह लवां जव रछी की नौक भैया,
विछ सांप संग रहे संका नहीं आय जू।
भूतन के वास मांहि जाऊं निसंक हीय,
वैरी समूह सों न डरो बल लाय जू।
स्पंध सूर व्याधरि दुष्ट जीव इन आदि केऊ,
इनकौ निवारि जाऊं आप सुख पाय जू।
इत्यादिक कष्ट मोकों सहज संतो एक दान,
नाम कष्ट सुनि तैंथर राय जू ॥ १०४ ॥

अर्थ - हे जिनेन्द्र मैं (सूंम) विष सर्प के साथ रहलूं उसकी छींक (फुसकार) को सहलूं, जहाँ पर भूतों का निवास हो वहाँ पर भी मैं निशंक होकर और वैरियों के समूह में भी निडर (निर्भय) हो बल पूर्वक रह लूंगा स्पंध सूर व्याधरि जैसी खतरनाक बीमारी से सहित लोगों के साथ भी सहज भाव से इनके द्वारा होने वाले कष्टों को निवारण कर वहाँ सुख प्राप्त कर सकता हूँ। इत्यादिक कष्टों को भी मैं सहजता से सह लूंगा। लेकिन एक मात्र दान के नाम को सुनना हमारे लिए कष्ट देने वाला है, मैं तो दान देने का नाम सुनने से डरता हूँ, सारा ही शरीर थर्रा जाता है। अतः आप मेरे से दान को देने का नाम लेने का भी कष्ट न करें। मुझे दान करने से बहुत डर लगता है ॥ १०४ ॥

दोहा –

सब दुख तोकौं सुख जसे, भासत जीव अयान।
एक दान के नाम तैं, लहे कष्ट उर थान ॥ १०५ ॥

- दाता वचन

अर्थ - जो दुख का कारण भूत अधर्म सेवन है वह तो तुझे सुखरूप प्रतिभासित हो रहे हैं और जो सुख देने वाले हैं वह तुझे दुख दायक लग रहे हैं एक दान के नाम से ही तेरे को कष्ट होता है ॥ १०५ ॥

गीता छंद –

भूलि तेरी कहों कबलुं हिताहित समझे नंहि,
सुख रूप कुं दुख रूप समझ एन हम देखी कहीं ॥
तू पाय नर भो तजै विरथा दया हम कुं आय जी,
दे दान पायो दाम बहुतै हठ न करि दुख दाय जी ॥ १०६ ॥

अर्थ - तेरी भूल को मैं कहता हूँ तुम तो कुछ भी हित-अहित को तो समझते ही नहीं हो और दुख को सुख और सुख को दुख रूप ही समझते हो ऐसा

मैं कह रहा हूँ। तुम यह उत्तम नर भव को प्राप्त कर वृथा खो रहे हो ऐसा जानकर हमें तेरे ऊपर दया उत्पन्न हो रही है। अब तुम तो दान दो और जो तुमने धन को बहुत हठ पूर्वक जोड़ने में लगे हो सो ऐसा धन दुख को ही देने वाला होगा। सुख न दे पायेगा॥ १०६॥

सोरठा –

पर धन गिर हर वीर, वज्र लिख्यो तू जगत में।
पै मै ही अति धीर, तो वच सब वृथि जाय है॥ १०७॥
- सूंम वचन

अर्थ - संसार में दूसरों का गिरा हुआ या अपहरण किया हुआ धन वज्रपात के समान घातक होता है। जैसे- जिसके ऊपर वज्र पात होता है वह वस्तु सर्वथा नाश को प्राप्त हो जाती है। उसी प्रकार गिरा हुआ धन लेना और दूसरों के धन का अपहरण करने वाले का सर्वथा नाश हो जाता है॥ १०७॥

सवैया (३१) –

मरनो कबूली भैया जीव तै न दान देहूँ,
ऐसौ कौन जोधा धर्म हम पै कराय जू।
कहै लोकीक मांहि पुण्य पर नाम न को,
जोरी तैं दिवावै तो हू चित्त मैं न भाय जू।
घनि कहैं कहा नाम पुण्य के न दाम देहूं,
छीन ले जावो जरि जावो क्यों न ठाय जू।
दीयो दान कौन काज कहो कौन दाम खोवे,
पर भव मैं भावै नृ कथा न क्यों थाय जू॥ १०८॥

अर्थ - हमको मरना पंसद है भैया परंतु जीते जी मैं दान नहीं दूंगा। तुम

हमारे ऊपर जोर देकर धर्म को करवाने वाले कौन होते हो ? जोड़ देकर के तो लौकिक पुण्य रूप कार्य को भी नाम का भी नहीं करूंगा। मेरे चित्त में यह बात नहीं रुचती है। धनी कहता है कि नाम के लिए पुण्य रूप दान को भी नहीं दूंगा। चाहे कोई जोरी (जबरदस्ती से) ही क्यों न छीन कर ले जाय। कौन से काम के लिए दान दूँ और अपने धन को क्यों खोऊँ ? पर भव में भावना की न कथा कौन करे सुख के स्थान विचार॥ १०८॥

दोहा –

वचन दान के सूंम को, बुरे लगत है वीर।
ज्यों कायर को रण विषै, आवध गोली तीर॥ १०९॥

- दाता वचन

अर्थ - सूंम (मूर्ख) को दान के वचन ही बहुत बुरे लगते हैं जैसे कायर पुरुष रण (युद्ध) स्थल (भूमि) में गोली और तीरों (बाणों) की वर्षा को देखकर डरता है। वैसे ही सूंम दान के वचनों को सुन भयभीत होता है॥ १०९॥

जोगीरासा की चाल –

दान विना धन निंद जगत में, सोभादायक नाहीं।
दाम सहति धन सफल करै भव धन्य कहै जग मांही।
मूजी को धन खाय चोर, टेकै धरती रहि जावै।
तातै हे घन धार सुनो धुनि देहि दान पुण्य आवै॥ ११०॥

अर्थ - दान के बिना धन उसी प्रकार से है जैसे नींद में सोया हुआ पुरुष होता है। प्राणी को दान देकर अपने जीवन को सफल बना लेना चाहिए। दानी संसार में धन्य कहा जाता है। चोरों का धन चोर ही ले जाते हैं या धरती (भूमि) पर पड़ा रह जाता है। इसलिए हे धनवानों ! मेरी बात को सुनो कि अपने धन को दान-पुण्य में देकर आगामी भव के लिए पुण्य रूप पूंजी को संग्रह कर लेना चाहिए॥ ११०॥

दोहा –

कहा वीर लर नो चहै, कौन सिखायो तोहि।
लाख वरि तोकुं कही, पुण्य कीमति कहै मोहि॥ १११॥

- सूंम वचन

अर्थ - सूंम कहता है कि हे वीर ! तुम क्यों लड़ना चाहते हो ? यह सब तुमको किसने सिखाया है ? तुम मेरे को एक बार ही नहीं लाख बार भी पुण्य को कमाने की कहते हो सो अब बिल्कुल भी मत कहो, मेरे को पसंद नहीं है॥ १११॥

सवैया (३१) –

लूटो भोमि पाल भावै वहबी जरि कौन जाय,
चोरि सव लेहु माल पीर नही आय है।
वहो क्यों न नीर मांहि पंच करि लेहु दंड,
तोफा लगाय मावै धन कौं हराय है।
इत्यादिक ओर घने कष्ट मांहि भलै जावो,
ताहू को खेद नाहि हीए मांहि थाय है।
कहो दान काज कभू दाम एक लगै भैया,
सो तो हमारो माल भूलि हू न पाय है॥ ११२॥

अर्थ - राजा चाहे जमीन को लूट ले। हमारा धन कौन ले जायेगा ? मैं ही दूसरों का धन लूट लूंगा। फिर हमें पीड़ा कहाँ से आ सकती है ? धन क्यों न पानी में बह जाय, गांव के पंच ही दण्ड के रूप में धन का हरण क्यों न कर ले जावें। इत्यादि और भी बहुत से कष्टों को भी भले सहन क्यों न करना पड़े। इन सबको (परेशानियों को) भी मैं बिना खेद खिन्न के सहन कर लूँ। लेकिन भैया जिस किसी भी काम में एक दाम (पैसा) भी खर्च हो। उस काम को मैं किसी भी तरह

से सहन नहीं कर सकूँगा। और एक पैसे का भी खर्च का काम हो तो उस काम को तुम भूलकर भी हमारे से मत कहना। और न कोई एक पैसा मेरे से पा पायेगा॥ ११२॥

दोहा –

अरे सूंम तो माल सठ, विरथा जय हैं वीर।
जैसे आम उद्यान फल काम न आवै धीर॥ ११३॥

- दाता वचन

अर्थ - अरे सूंम तू धन के पीछे मूर्ख हो अपने जीवन को व अपने माल को क्यों व्यर्थ में जाने देते हो ? जैसे उद्यान में आम लगे हुए होते हैं लेकिन वह आम उद्यान के कुछ भी काम नहीं आते हैं। दूसरे लोग ही तोड़कर खा लेते हैं। उसी प्रकार से दान में धन को लगाने के कारण सारा धन यहीं पड़ा रह जायेगा। कुछ लाभ न उठा पाओगे। तेरे मरने के बाद तेरे ही पुरजन परिजन उसका उपभोग करेंगे॥ ११३॥

अडिल्ल छंद –

आप न खावै सूंम ओरकुं दे नहीं,
द्रव्य गाड़ि भू मांहि भूख रहे उर मही।
ये जग मै हम सुनि सु अब देखी सही,
मूरख को धन अघ थांनिक लागै कहीं॥ ११४॥

अर्थ - सूंम न तो स्वयं ही खाता है और न ही द्रव्य को दूसरों के उपकार स्वरूप भूखों को देता है व स्वयं भी अपने पेट को खाली (भूखा) रखता है। संसार में इस बात को अभी तक तो सुना ही था कि कंजूस न स्वयं खाता है न दूसरों को खिलाता है। लेकिन अब तो तुम्हें देख भी लिया है। इस प्रकार भूखों का धन, पाप का धन, पाप ही में खर्च होता है। जहाँ पाप की बाहुल्यता हो वहीं पर उसका धन उसके पाप रूप स्थान में ले जाता है। क्योंकि पाप के द्रव्य को खाने से बुद्धि पाप रूप ही हो जाती है जिस कारण ही से वह सदा पाप ही करता

है धर्म को नहीं करता कहा भी है कि "जैसा खाये अन्न वैसा होय मन, जैसा पीवे पानी वैसी बोले वाणी" यह कहावत सूंम पर चरितार्थ होती है ॥ ११४ ॥

दोहा –

अरे कल्पवृछि तू जगत मैं ओर न दिख्यो कोय।
दान देन मति मो कहै, तो सिर द्यौंत न जोय ॥ ११५ ॥

- सूंम वचन

अर्थ - संसार में दान कल्प वृक्ष के समान इच्छित फल देने वाला है लेकिन दान का ऐसा फल मैंने नहीं देखा है। इसलिये तुम मुझे दान देने के लिए मत कहो अर्थात् मेरा सिर मत पचाओ ॥ ११५ ॥

सवैया (३१) –

अरे गांठि दाता की देख्यो अनोखो तोहि,
तेरे सीस जाय भूप सभा मैं पुकारि हूँ।
पंचन पैं जाय पागडा पुकारि ठानि,
बहु तीहि मात लाय तेरो मद टारि हूँ।
जहां तू रहै तहां भूलि हूं न नीर पीऊँ,
देस तजि जाऊं दाव लायें तोहि मारि हूँ।
तातैं भो संयानै दीन होय वार वार कहूं,
दान की न कहो मोहि मेरो तन छारि हूं ॥ ११६ ॥

अर्थ - सूंम दाता से कहता है कि मैं तुम्हारे माल की गांठ बांध कर सिर पर नाम लेकर राज सभा एवं पंचों के सामने तुझे पुकार कर डाल देता हूँ जिससे तुम्हारा मद (घमण्ड) खत्म कर देता हूँ। अब जहाँ पर तुम मिल जाओगे वहां का पानी तक नहीं पीऊँगा और उस स्थान (देश) को छोड़कर अन्यत्र ही चला

जाऊँगा, तेरे कारण से ऐसा ही करना पड़ेगा। इसलिए मैं (सूंम) तुमको समझदार (ज्ञानी) मानता हूँ सो मेरे को दान देने की बात बार-बार मत कहो। मैं कुछ भी दान करना नहीं चाहता और न मैं करूँगा। मुझे तुम्हारी प्रेरणा की भी आवश्यकता नहीं है॥ ११६॥

दोहा –

अरे जीव सुभ वचन सुनि, द्वेष न करो सयान।
भेकज कटुक लए जरा, नास होय सुख थान॥ ११७॥

- दाता वचन

अर्थ - दातार सूंम को कहते हैं कि अरे सूंम तुम ज्ञानी हो दान, धर्म करने रूप वचनों को सुनकर उनसे द्वेष मत करो और न ज्ञानियों को देखकर उनकी निंदा करो कटुक वचन बोलो, वरना दुख के अलावा सुख का नामो निशान भी नहीं रहेगा। तथा तुझे दुख के स्थान स्वरूप नरक निगोद आदि दुर्गतियों में जाकर घोर दुःखों को उठाना पड़ेगा। अनेकानेक जन्मों तक दुखों को ही उठाना पड़ेगा। अतः दान करना उचित है॥ ११७॥

गीता छंद–

अव तो जु तोकौं वचन दुखदा दान के लागैं सही,
सोऊ दैती वर लोभ तेरै कछू सुधि बुधि ना रही।
पर भवै तव फल दान करि है तासफल सुख दायरे,
विना दान मूरिख दाम तेरो सकल अघमैं जाय रे॥ ११८॥

अर्थ - हे मूर्खानन्द सूंम! अब तो तेरे को दान देने रूप वचन दुख रूप लग रहे हैं तो निश्चित ही तेरे तीव्र लोभ कषाय चारित्र मोहनीय कर्म का उदय है, कर्म के उदय से ही आज तेरी सुधि बुधि खत्म हो गई है। और इस भव में जो तू दान देगा तो पर भव में सुख रूप फल प्राप्त हो जाएगा। दान के बिना मूर्खों का दाम अर्थात् सारा धन पाप में ही जायेगा॥ ११८॥

दोहा –

मिष्ट वचन तेरे मधुर अंतर प्राण विनास।
जाहु दुठ घर आपनें, वचन नांहि परकास॥ ११९॥

- सूंमवचन

अर्थ - यहाँ मूर्खानन्द दातार से कहता है कि तेरे मिष्ट व मधुर वचन मेरे अंतर प्राणों का नाश कर रहे हैं। अतः दुष्ट अब तू अपने वचनों को अपने पास ही रख, मेरे पास उक्त वचनों को बोलने की कुछ भी आवश्यकता नहीं है॥ ११९॥

सवैया (३१) –

मेरे घरि मांहि तोकौं घनो द्रव्य भासत है,
दोरि दोरि मोही कौं बतावै दान वावरे।
देख मेरो खांन रस रहति तन पट नांहि सीस,
मोटलीयें फिरौ रांक सो लिखाव रे।
अब ही घरि पूत भयो बड़ी सुता व्याह थयो,
दोय सुता ओर ताको करनो उछावरे।
इत्यादिक खरच मेरे घर ही में घनो भैया,
दान के निमत्त दाम कैसे लुटावरे॥ १२०॥

अर्थ - सूंम कहता है कि क्या तुम्हें हमारे ही घर में बहुत सारा धन दिखता (प्रतिभासित) है जो मूर्ख तुम मेरे द्वार पर आकर दान देने रूप बात को बताते हो ? तुम्हें दिखता नहीं है कि मैं बिना दूध, घी, शक्कर (मीठा) नमक आदि के ही भोजन करता हूं और शरीर पर फटे पुराने चीथड़ों को धारण करके समय काटता हूँ। और सिर पर बोझा रखे हुए अपने को भिखारी (रंक) दिखा रहा हूँ। अभी हमारे घर में पुत्र हुआ है, बड़ी बेटी की शादी अभी करना है फिर दो बेटियों का भी विवाह

करना है। इत्यादि मेरे घर पर अभी खर्च ही खर्च का काम है भैया बहुत ही खर्च होने वाला है। अतः दान के निमित्त से हम दाम को कैसे लुटा देवें ? ॥ १२० ॥

दोहा –

धन पापि को पाप में, खरच होय सुनि वीर।
भलो अंस जो होय धरि, तो पुनि लागै धीर ॥ १२१ ॥

- दाता वचन

अर्थ - दातार कहते हैं कि पापियों का धन पाप में ही लगता है, सुना वीर! न्याय से जितने अंशों में धन कमाया होगा उतना ही दानादि धर्म कार्य में खर्च हो पाता है। एक कहावत है कि - "पुण्य की जड़ पाताल में और पाप की जड़ अस्पताल में" ॥ १२१ ॥

अडिल्ल छंद –

पापी धर्म विरोध भलो मन लाय रे,
धर्म तहां अघ नास तुरत ही थाय है।
पाप तनो तहां चलन धर्म तहां है नंही,
तातैं तो हित जानि कही पुनि देस ही ॥ १२२ ॥

अर्थ - पापी जीव धर्म कार्य का सदा विरोध करता है लेकिन जहां धर्म होता है वहीं पापों का सर्वथा नाश तत्काल होता है। जहाँ पाप कर्म है वहाँ पर धर्म कभी नहीं हो सकता है। इसलिए तुम यदि अपना हित चाहते हो तो पुनः पुनः धर्म कार्यों को करते रहो। जिससे तुम कहीं भी, किसी भी गति या पर्याय में रहोगे तो वहीं पर सब प्रकार की सुख शान्ति की प्राप्ति हो जायेगी और दुःखों से छुटकारा मिल जाएगा ॥ १२२ ॥

दोहा –

हम पापी तुम धर्म्म गिर, गैल अवै तू छारि।

कौन पाप फल तैं सही, मिल्यो आय सुख टारि ॥ १२३ ॥

- सूंम वचन

अर्थ - सूंम कहता है कि - ठीक है तुम धर्मात्मा कहलाये और हम पापी कहलाये। सो अब तुम मुझे छोड़ो। मेरा पीछा मत करो। पाप का फल क्या है कौन जाने ? पुण्य से सुख मिला और दुख टल गया है यह किसने जाना ? हम तो धन के वजह से सुख भोग रहे हैं बस इतना ही हम जानते हैं और कुछ नहीं जानते ॥ १२३ ॥

सवैया (३१) –

कि सब भरभूंजे को सो धान सेक द्रव्य पायो,
बेची तरकारी स्वांग कुंजरे को लाय जू।
कैं बिठारो वीर रोटी पराई सेकि काटि,
वन काठि सीस ढ़ोए कष्ट पाय जू।
इत्यादिक खेद कहो कव लुव नाय,
भाखूं एक एक दाम जोरि इक ठोकराय जू।
तापैं मोकौं कहै भैया दान देहु दया ठानि,
मैं ही अतिदीन दया काकी उपाय जू ॥ १२४ ॥

अर्थ - धान, चना आदि को सेंक कर (भाड़ भूंजकर) द्रव्य को पाया है, कभी सरकारी स्वांग धरा, कभी दूसरों की रोटियां सेंककर, कभी वन से लकड़ी को काटा इत्यादि अनेकों कष्ट को खेद खिन्न होकर सहन किया और धन का संग्रह किया इसलिए भैया अब तुम मेरे ऊपर दया करो मैं स्वयं ही अति दीन हूँ उसका उपाय तो बताते नहीं हो और उल्टा दान देने की कहते हो सो मैं कैसे दूँ ?॥ १२४ ॥

सवैया (३१) –

गरभ मांहि आए तवैं पिता भवनघ्मंन,

नाहित नर्तै दिगंवग से तप सीसो खानो जू।
सहति बहु राग वैन सवतै अति दीन कहै,
पर के जस गावत निस होत है भयान जू।
तोहू उर भूख रहे पाप उदै सबै सहे सीत,
उस्न बाधा सब तन पै सहनांन जू।
ऐसे घर आए कोऊ पुण्य जोग द्रव्य पायो,
उर मैं विचार रहे हि कैसे हम दान जू॥ १२५॥

अर्थ - गर्भ में आते ही पिता का वियोग हो गया जिससे मेरा कुछ भी हित न हुआ। और दिगम्बर रूप धारण कर तपस्वी बन अब दुख को सहन कर अति दीनता वचनों को मैंने कहे और पर (दूसरों) का जस (यश) को भी मैंने भयवश गाया है। फिर भी पाप कर्म के उदय से भूख की बाधा को सहा, ठंडी (शीत) उष्ण (गर्मी) की पीड़ा को इस शरीर के द्वारा सहन किया। भूख, प्यास, शीत, उष्ण, आदि की पीड़ाओं को नाना प्रकार से सहन करने के बाद पुण्योदय से द्रव्य (धन) को प्राप्त किया ऐसा हृदय में विचार रहते हुए हम कैसे दान दे सकते हैं ? धन कोई गली, बाजार में पड़ा हुआ थोड़े ही मिल जाता है ? जो दान में धन को खर्च करें ? ॥ १२५॥

दोहा –

अरे जीव तू इम कहे, मैं पुण्य तैं धन पाय।
तो सठ जो पुनि क्यों न करि, तातैं सब सुख थाय॥ १२६॥

- दाता वचन

अर्थ - दातार कहता है कि - अरे मूर्खानंद ! जब तू ही इस बात को कह रहा है कि धन पुण्य कर्म से प्राप्त होता है सो अरे मूर्ख तूने पूर्व जन्म में पुण्य किया था जो आज प्राप्त कर लिया। लेकिन अब यहाँ पुनः पुण्य क्यों नहीं करता कि जिस

पुण्य के उदय से आगामी जन्म में फिर से सुख रूप सामग्री प्राप्त हो जाये ॥ १२६ ॥

सवैया (३१) –

पुण्य फल चाहै पुण्य करै नाहि भोरे जीव,
पाप रसरा तो या के फल तैं डराय रे।
बोवे बबूल (बंबूर) डरै कांटन के लागन,
तैं चाहै फल अंब बीज बोवनो न पाय रे।
तातै मोकुं यह बड़ो लागत अचंभो यार,
पर भव में तोकौं सुख कैसे मिलाय रे।
सो तो भैया यह व्यौंत तो ही कुं दुख दाहै,
तातैं मांनि सीख मेरी दान कुं कराय रे ॥ १२७ ॥

अर्थ - तुम पुण्य को तो चाहते हो लेकिन पुण्य कर्म को करते ही नहीं हो। तो हे प्राणी ! जब पुण्य चाहता है तो दान, धर्म से क्यों डरता है। जैसे तुम बबूल के बीज को तो खेत में बोते हो तो फिर बबूल में होने वाले कांटों से क्यों डरते हो ? और आम रूप फल को खाना चाहते हो सो बबूल से आम मिलने वाले नहीं है। ठीक उसी प्रकार से तू पुण्य रूप फल को चाहता है पुण्य कर्म क्यों नहीं करता उससे (पुण्य से) क्यों डरता है। पाप कर्म रूप फल को मत बोओ जो दुख को पाना पड़े। इसलिए मुझे अचंभा हो रहा है कि इस भव में जब पुण्य कर्म नहीं कर रहा है पर भव में तुझे सुख कैसे प्राप्त हो सकता है ? अब तू सोच कि भैया जब तू दान पुण्य से दूर रहेगा तो सारा जीवन दुखदाई हो जाएगा। इसलिए अब तू मेरी बात (शिक्षा) को मान और दानादि को सदा कर और सदा के लिए सुख को प्राप्त कर ॥ १२७ ॥

दोहा –

अरे ढीठ या जग विषे, तो सो नांहि सुनाय।

दोरि दोरि नित दान की, कहै वात मो आय ॥ १२८ ॥

- सूंम वचन

अर्थ - अरे ढीठ बेशर्म तेरे समान किसी को इस संसार में मैंने न सुना, न देखा है। कि रोज-रोज दौड़-दौड़ कर मेरे पास आ-आकर नित्य प्रति बार-बार दान देने की बात को आकर मेरे से कहते हो ॥ १२८ ॥

सवैया (३१) –

पुर पीले हाथी वन चल्यो घास खोदन,
कुंजल को समूह मेघ आयो उमगाय जू।
नदी नाल पूर सव राह कीच थान घनों,
झंझावाय चलै कछू पैं न पाय जू।
अैसी समै में सीस भार लेय राह आऊं,
पांव पांव पुरौं भमि रपटि अकुलाय जू।
ऐसे कष्ट खाय दांमनि ठिकै इक मेकी यों दान,
के निमित्त यौं ही कैसे दीयो जाय जू ॥ १२९ ॥

अर्थ - वन में जाकर घास को काट-काट कर हाथ पीले पड़ गये, भूमि को खोदा तो उसमें जल का स्रोत तेजी से आया। आकाश में मेघ उमड़ पड़े। रास्ते में नदी-नालों में जल का पूर आया जिससे सारा रास्ता कीचड़ युक्त हो गया और बहुत तेज आंधी तूफान चलता रहा और मेरे तन पर वस्त्र भी नहीं थे जिससे मुझे बहुत दुख हुआ और ऐसी ही स्थिति में अर्थात् आंधी, तूफान रूप हवा शरीर पर भी ठीक है रास्ता कीचड़ से भरा हुआ है ऐसे समय सिर पर भार रखकर नंगे पैर चला और नाना प्रकार की पीड़ा को उठाया व आकुलता को प्राप्त बना रहा। इस प्रकार के घोर कष्टों से धन को इकट्ठा किया है ऐसे कष्टों से धन को संग्रह किया है। ऐसे धन को दान में कैसे दिया जाय ? ॥ १२९ ॥

दोहा –

ऐसो कष्ट उपाय कैं, लयो द्रव्य तैं वीर।
ताहि तै हम कहत हैं, सुनो हमारी धीर॥ १३०॥

- दाता वचन

अर्थ - दातार सूंम से कहते हैं कि जब तुमने इतने कष्ट से द्रव्य को कमाया है। इसलिए हम तुमसे जो कहते हैं सो सुनो। मेरी बात को मानो और दान करो जिससे कि पुण्य के प्रभाव से द्रव्य और भी अधिक प्राप्त हो जाएगा। फिर तुम भी सब प्रकार से सुखी हो जाओगे। दान तो कल्पवृक्ष के समान उत्तम फल को देने वाला है। सब सुख का कारण है॥ १३०॥

सवैया (३१) –

घनों कष्ट खाय माल लीयो बहु पाप सेती,
पाप ही मैं जाय यह कौन सीस यान है।
तातैं धन पाय दान दीजे विचक्षन नर,
भूलिये न वात यह तन को पयान है।
सास्वती न काकै यहै चंचल है चपला,
सो चाहै सोही करो सीख गुरय्यौं चयांन है।
पाप कीयें दुख सुख होय तवै पुण्य करै,
तातैं भैया जानि लेहु दान ही दया न है॥ १३१॥

अर्थ - बहुत ही कष्टों से माल को प्राप्त किया है सो दान के बिना वह द्रव्य बहुत से पाप में ही जायेगा। यह तुम्हारी कौन सी विद्वत्ता है। इस धन को पाया है तो दान दीजिए व विचक्षण (अचिन्त्य) फल को प्राप्त करिए। इस मनुष्य पर्याय को पाकर दान करने रूप उत्तम बात को मत भूलना। लक्ष्मी की तीन ही गति है - दान, भोग और नाश। लक्ष्मी तो अति बिजली के समान चंचल है। कब कहाँ

चली जाएगी, पता नहीं। अभी पुण्य है सो धन मिला है, धनवान हो और पाप का उदय आ जाय तो भिखारी बन जाओगे इसलिए गुरूओं ने शिक्षा दी है कि पाप से दुख और पुण्य से सुख प्राप्त है। अतः भै ग दान पुण्य को करो। इस बात को अच्छी तरह से जान लेना चाहिए और अपना उसके अनुसार आचरण करना चाहिए॥ १३१ ॥

दोहा –

पाप कुमायो पाप मैं, जावै सो पर मान।
पुण्य विषै धन पा पाप को, लगै सुजुगति न जाव॥ १३२ ॥
- सूंम वचन

अर्थ - सूंम कहता है पाप करके मैंने पाप ही कमाया है सो उसके अनुसार ही हम पर भव में चले जायेंगे। पुण्य के उदय से धन को पा लिया है और फिर दान नहीं किया मात्र जोड़ते रहे, तो लोभ कषाय तथा परिग्रह की बाहुल्यता होने के कारण सुगति मिलने वाली नहीं है। पुण्य के प्रभाव से ही धन-धान्य सुख प्राप्त होता है॥ १३२ ॥

सवैया (३१) –

समझें कहा रे भोरे तू ही एक दाता भयो,
पाप को कुमायो माल पुण्य मैं न लाईए।
पुण्य थकी आवै सो ही पुण्य मैं लगाईए है,
पुण्य तनों भूलि हू न पाप मैं तपाईये।
तातैं ऐसी जांनि भैया पापतैं कुमायो माल,
पुण्य में न लागै यह पाप मैं लगाईए।
तेरे घर मांहि माल भले काज सेती मिल्यो,
तू ही दे दान औरैं काहि कौं वताइए॥ १३३ ॥

अर्थ - सूंम कहता है कि संसार में समझदार एक मात्र तुम ही दान के देने वाले दातार हुए हो, पाप से कमाये धन को पुण्य में नहीं लगाया जाता है। जो धन पुण्य से आता है उसे ही पुण्य में भी लगाना चाहिए, पुण्य से आये हुए धन को भूलकर भी पाप में न लगावे इसलिए इस प्रकार जानकर भैया पाप से कमाया हुआ माल पुण्य में न लगावें, पाप में ही लगाते हैं। तेरे घर में माल (धन) अच्छे काम करके कमाया सो तू ही दान कर औरों को क्यों बता रहा है॥ १३३॥

आगे सूंम तो पिता अर ताका पुत्र दातार ताके लछिना-

सवैया (३१) –

जाको पिता सूंम पुत्र दाता मांहि खोट कहै,
घर में कपूत भयो उर को कुटैया है।
घर कोले माल अन्य रांक न कुं दान देहि,
जोर दयावान भयो घर को लुटैया है।
कोड़ी कोड़ी करि कें इकठी लोक गारी सही,
पेटि गांठि दई सीस भार मैं उठैया है।
ऐसी रीति माल भयो धन देव पित्र नयो,
ताकौं सुत मेरो सठ दान मैं उठैया है॥ १३४॥

अर्थ - जिसका पिता सूंम है उसका पुत्र दातार है सूंम उसे खोटा कहता है ऐसा यह दान देने वाला कपूत पैदा हुआ है जो हृदय को दुखी करने वाला है। घर से माल लेकर अन्य रंक को दान देना कुदान कहलाता है। जो ऐसे दयावान होकर दान कर अपने घर को ही लुटवाते हैं। इस संसार में कोड़ी-कोड़ी को जोड़-जोड़ कर धन इकट्ठा कर पेटी को मजबूत कर सिर पर भार उठाया है। इस प्रकार से तो हमने माल प्राप्त किया। यह पुत्र मूर्ख उस धन को दान देकर माल उड़ाने में लगा हुआ है॥ १३४॥

ताको पिता दातार अर पुत्र सूंम ताके लछिन -

सवैया (३१) -

वाप धारि ऐसो दाम देहि नांहि पैसो,
ओर चित्त को कस्त घनें पाप को करैया है।
खोटे देव पूजै लोक निंदा तैंन धूजै ताकुं,
धर्म की न सूझै मेरे धर्म को हरैया है।
घनो धरि दाम ओर जोरन की वांछा है,
धर्म तै विमुख भूप पहाड को भरैया है।
ऐसो बाप पायो मांनु पाप उहै आयो पार,
दान कैसे दीयो जाय पिता मोल रैया है॥ १३५॥

अर्थ - पिता दातार दाम (धन) तो देता नहीं है दान में, और पैसों में अपने चित्त को लगाये बहुत ही पापों को करने वाला है, खोटे देवों को पूजता है लोक में निन्दा को करवाता है और धर्म को करने की सूझती नहीं है, बल्कि मेरे धर्म को ही हरण करवाने वाला है। बहुत सारा धन रखा है फिर और धन जोड़ने की इच्छा बनी हुई है। और धर्म कर्म से विमुख होकर राजा भी अपने भंडार को भरने वाला है। ऐसा पिता पापों को मान आया है वह दान कैसे दे सकता है ? क्योंकि पिता से ऐसा पुत्र लड़ने वाला है॥ १३५॥

ताको पिता दातार अर पुत्र सूंम ताके लछिन-

सवैया (३१) -

पुत्र कहै देखो पिता सवै माल खोवत है,
रांकन कों दान देहि सोचन हमारो जू।
हम तो कुंमाऊ नांहि खावैं कहो काकैं जाय,
यो तो भयो दानी पर लोक को सुधारो जू।

देखो पारो सी माम साले बहनेऊ सवैं,
एतो चल्यो मरन करै हमकों विगारि जू।
तातैं यह नरक जाहु सारो कुणी को वीर,
यह तो सठ दानी हम लहें कहा भारो जू॥ १३६॥

अर्थ - पुत्र पिता से कहता है कि इस पिता को देखो माल को खोने में लगा है। रंकों को दान देने में लगा है और हमारी कुछ भी सोच चिन्ता नहीं है। दान देने में मस्त रहता है। हमने तो कमाया तो है नहीं, तो बताओ अब किसके यहाँ खाने को जाऊँ ? यह तो दानी बन कर अपना परलोक सुधार रहा है। अपने पड़ौसी को देखो कि वह अपने मामा, साले, बहनेऊ सभी ने यहाँ आकर मरण लोक को चले गये हैं उसी तरह यह पिता भी हमको बिगाड़ कर ही रहेगा। इसलिए यह मरकर नरक में जायेगा। यह मूर्ख हमें ले डूबेगा। यह कहाँ मेरे ऊपर भार बन गया है॥ १३६॥

नारी तो सूंम ओर भरतार दातार कथन-

दोहा –

मैं तो मांनि वीर सब, जो तुम थो उपदेश।
मांनै नही घर नारि मो, दान देन कछु लेस॥ १३७॥

अर्थ - मैं तो सब मान जाऊँ, जो कुछ भी तुम्हारा उपदेश है। परन्तु घर वाली नहीं मानती वह तो रंच मात्र भी दान नहीं देती है॥ १३७॥

सवैया (३१) –

पाप कै उदैवैं नारि मिलि घर मांहि ऐसी,
दान नामलीये मोहि धरतैं निकासै है।
कोड़ी कुमाइ मैंने खरचौं तो फारि,
खावता की हांक आंगै डरो नाग नसी भासै है।

ताके भय खाय समैं भोजन कौ नाहि जाऊं,
आऊं घर माहितवे सवै बुधि नासै है।
तू तो कहै दान देहि मेरे अैसी नारिगे,
हमो कुं दुख अैसो भैया जीवन न भासै है॥ १३८॥

अर्थ - पाप कर्म के उदय से हमें ऐसी घरवाली (स्त्री) मिली कि दान का नाम लेते ही हमें घर से निकाल दे। मैंने करोड़ों की कमाई कर ली फिर खर्चने के नाम से ऐसी है जैसे नाग ने ही खा लिया है। यही खर्च के भयवश ही तो मैं समय पर भोजन करने घर पर नहीं आता। फिर भी जब मैं घर आता हूँ तो मेरी सारी बुद्धि का नाश हो जाता है। तू तो कहता है कि दान दे, लेकिन हमारे ऐसी नारी प्राप्त हुई है कि अब हमारा सारा जीवन ही दुखदाई बन जायेगा। ऐसा प्रतिभासित होता है॥ १३८॥

सवैया (३१) -

चोरि चोरि नारि माल छांनै इकठो करै,
कहै नाथ बुरो द्रव्य दान में गुमावै है।
यो सी मैं भी होती तो घर को निभाव कैसे,
रोय रोय रांक जाय कण हूं न पावै है।
कांगें कहैं गारी तो हूं रहौं हीये भारी,
बुरै कहै लोक नारी तो हु दान नही भावै है।
तू तो चल्यो मरन साथ दया क्यों न लेहि,
मेरी दान में न देहि माल मो कुं दुख थावे है॥ १३९॥

अर्थ - पत्नि ने चोरी करके जो माल छिपा कर इकठोर (एक जगह) पर संग्रह किया है तो हे नाथ ऐसे चोरी के माल को दान में कैसे दिया जायेगा। दान में खर्च कर देगें तो घर परिवार कैसे निभायेंगे। रो रो के तो परिवार को निभा रहे

हैं। अतः एक कण भी नहीं पा सकोगे। कंगाल कहता है कि गाली हृदय में बुरी लगती है ऐसी लोक की नारी के दान के भाव ही नहीं होते हैं। तू तो मरण करके चला जाये पर लोक में तो साथ दया क्यों न ले जाओ। मैं दान में माल को नहीं दूंगा। दान में देने से हमें दुख होता है॥ १३९॥

नारी दातार और भरतार सूंम कथन -

सवैया (३१) –

कहे नारि मेरे घर घर को धनी करूर,
धर्म ही तैं दोष दुष्ट पाप हितकारि है।
यानैं शरीर धारि दान कभू दीयो नांहि,
धर्म नाम लीये लरै अति ही विषारी है।
विसन मै पूर ओर कूर अति भावन को,
धर्म नाम लीये लात मूं की मुख गारी है।
ऐसे पति विना नारि विधना कंवारी भली,
पापी पति पावन तें भली देह हारी है॥ १४०॥

अर्थ - नारी कहती है कि मेरे घर को धनी बनाऊँगी। धर्म को दोष युक्त पाप ही हितकारी है। हमने जब से शरीर को धारण किया है। तब से कभी दान दिया ही नहीं है। और धर्म का नाम लेते ही मेरी आत्मा को धर्म को बहुत ही जल्दी छोड़ देता हूँ। व्यसनों में मैं पूरी तरह आसक्त हूँ और अति क्रूर भावना वाले को धर्म का नाम तो मुख से लेते ही एक लात मारती है और गाली देती है। ऐसे पति से तो नारी को विधवा हो जाना या कुंवारी रहना ही भला है। ऐसे पापी पति सें तो शरीर को ही छोड़ देना भला है॥ १४०॥

सवैया (३१) –

घर मैं कुनारी भोग दसा सव टारी तप,

करै सदा भारी द्रव्य दान मैं उठावै है।
मैं तो घने कष्ट पाय भोगनि के निमित्त,
लाऊँ या कुंदे हूँ आय यह रांक न कुंधावै है।
सै तो ऐसी बुरी नारि तजिकैं परदेस रहो,
दान देन मोकुं धरी एक न सुहावै है।
कै तो घर छारि दान को सुभाव टारि,
लांऊं द्रव्य पाप ठानि धरम क्यों करावै है॥ १४१॥

अर्थ - घर में दान देने वाली कुनारी के साथ भोगासक्त कि दशा में रहना तो अच्छा है कि तप को धारण करना और इस बहुत से धन को दान देकर लुटा उठा दें। मैं तो कष्टों को पाकर भोग के निमित्त से तो धन को लाकर इसे दिया है और यह रंक लोगों को दे देती हैं। मैं तो ऐसी बुरी (खोटी) नारी का त्याग करके परदेश में ही रह लूँगा। इस घर में दान दिया जाता है ऐसा घर मुझे नहीं सुहाता है। या तो यह मेरी नारी दान देना छोड़ देवे या मैं परदेश को चला जाऊँगा। यह द्रव्य तो पाप से आया है, दान धर्म में इस धन को क्यों खर्च कराया जा रहा है। धर्म से आये हुए द्रव्य को धर्म में लगाना ही उचित है॥ १४१॥

सब कुटुंब सूंम वचन -

दोहा –

पापी घर सब नर इसे, नहीं दान को वाव।
दांड दीयो नृप को घनों, अघ को घना उछाव॥ १४२॥

अर्थ - यह घर सारा ही पापी है, इस घर में किसी का भी भाव दान देने का नहीं है। इस नगर के राजा ने भी हमें बहुत दण्ड दिया। इस घर में तो अघ (पाप) कर्म का ही उछाव है। दान धर्म का उछाव नहीं है॥ १४२॥

सवैया (३१) –

दानी को देख सवैं आपस मैं ऐसे कहैं,

यह बड़ो दान धान द्रव बहु उडावै है।
याको ही या वज्र समान माल दीयो जाय,
कैसे बेटा बेटी ब्याह मांहि क्यों नै लगावै है।
यापैं मति जावो कोऊ दान की सिखाय देगो,
याकूं पापकारी जीव पल नैं सुहावै है।
तातैं सव सुनो हो कटुंब जन मेरी सीख,
यह दान वान द्रव्य नासि ही करावै है॥ १४३॥

अर्थ - दानी को देखकर सब आपस में इस प्रकार से कहते हैं कि यह बड़ा दानी है द्रव्य को दान में बहुत उड़ाता है। इस दातार को वज्र के मान समान दान में कैसे दिया जाता है? अभी बेटी भी ब्याह के लिए तैयार बैठी है उसमें द्रव्य को क्यों नहीं लगाता है पाप बुद्धि में मत जाओ। पापी को वह दान की शिक्षा देते हैं। जैसे पापकारी जीवों को दान आदि की शिक्षा कभी नहीं सुहाती है। इसलिए सारे कुटुंब मेरी शिक्षा को सुनो, यह दान धर्म करने से धन खर्च ही होता है। दान करने से सारा द्रव्य नाश को ही प्राप्त होता है॥ १४३॥

दोहा –

पुण्य संग कौं वरजितू, पाप पर रे कहोय।
कानां नैं को गति गमन, तेरो हो नो सोय॥ १४४॥

- दाता वचन

अर्थ - पुण्य योग से सारे पाप आत्मा से दूर हो जाते हैं और पुण्य से जीवों को ऐसा वर प्राप्त हो जाता है कि अंधे को गति गमन व अच्छी ख्याति प्राप्त हो जाती है। पुण्य से तेरा भी अच्छा हो जायेगा॥ १४४॥

गीता छंद –

पाप में अति सहाय करि है धरम खोवन की कहै,

यह जीव परतक्ष पाप मूरति जाय दुरगति दुख सहै।
तिस माल कों भूपाल खावै तथा अघ मांहि लगै,
सो जीव अप जस पाप जग में काय तजि दुख में पगै ॥ १४५ ॥

अर्थ - पाप के उदय से समय पर धरम अति ही दुख से छुड़ा कर सुखी करता है और यह जीव पाप कर्म का प्रत्यक्ष में दुर्गति के दुख फल को प्राप्त होता है। अतः उस धन को राजा हड़प ले जायेगा तथा पाप काम में लगेगा, जिससे यह जीव संसार में अपयश को प्राप्त होगा और अंत में शरीर को छोड़कर दुख देने वाली नरकादि गति में चला जायेगा। और यदि धर्म को धारण कर लोगे तो सदा काल किसी भी पर्याय को धारण करे तब भी सुख की प्राप्ति कर लेगा। धर्म के प्रभाव से दुख भी सुख रूप परिवर्तित हो जाता है ॥ १४५ ॥

दोहा –

भले बुरे कहने तनो, रंग रोस नहीं कोय।
माल रहे घर आपनें, तो सब ही सुख होय ॥ १४६ ॥
- सूंम वचन

अर्थ - सूंम कहता है कि संसार में सब एक दूसरे को भला बुरा कहते रहते हैं, उसमें कोई रंग रोस कुछ भी नहीं होता है। माल को अपने पास होने से ही सुख होता है। दान देने में धन खर्च करने पर माल का सुख कैसे हो सकता है ? जिससे सुख होता है वही माल जब पास में रहेगा ही नहीं तो सुख कहाँ से मिलेगा ? ॥ १४६ ॥

सवैया (३१) –

भूप नैं बुलाय कही तेरे घर द्रव्य कै तो,
हम कौं बताय भैया नगर सेठ थान जू।
तवै मैं कही ना थी मेरे घर द्रव्य काहां,

भूख न के मारे भए सवैं तन हांनि जू।
दमरी के काजि सीस गांठि लेय हुरि फिरों,
देस ग्राम भ्रमों सीस गरमी तन मांन जू।
देखो स्वांग मेरो नाथ घर को गमाय देखो,
आजि धान मिल्यो धरैं कालि की न जावि जूं॥ १४७॥

अर्थ - राजा ने हमें बुलवा कर कहा कि तेरे घर पर द्रव्य है कितना है, बता दो सच-सच, मैं तुम्हें नगर सेठ के पद पर स्थापित कर दूंगा। तब मैंने उसको (राजा) को कहा कि मेरे घर पर द्रव्य कहाँ है ? मेरा भूख के कारण शरीर सूखता जा रहा है, भूख के वजह से मैं तो मरा जा रहा हूँ। एक दमरी को पाने हेतु (कारण) से सिर पर गठरिया को रख देश ग्रामों में भ्रमण करता हूँ, वैशाख, जेठ की गर्मी में भी भूख, प्यास सहन कर व सिर पर भार रखकर देस गावों में भ्रमण करता फिरता हूँ। ऊपर नीचे की गर्मी को सहता हूँ। यह मेरा स्वांग देखो नाथ घर के द्रव्य को गमाया है। आज ही धान्य मिला है कल की आजीविका का क्या होगा उसका भी भरोसा नहीं है। ऐसी स्थिति (परेशानी) में मेरे माल कहाँ से आया ? ॥ १४७॥

सवैया (३१) –

सेठ पद देय ताकों चित्त को उदौ रहोय,
मैं तो दाम गये प्राण गए मांनि लेत हूँ।
मेरे घर फूस नांहि नारि सुता भगरिखादिक,
परेहू घने गाढ़े थुर मोल देत हू।
करों सुत ब्याह तवै कन्या के दाम लेहू ,
थोरे जन न्योतो हम दाम नहीं देत हूं।
ऐसो कष्ट खाय दाम जो ग्रोतुछ मैंने देव,

भूपन के मागत तैं बाधा बहुलेत हूं ॥ १४८ ॥

- सूंम वचन

अर्थ - सेठ का पद देकर वह मेरे धन को देखकर अपना चित्त मेरे धन पर लगा लेगा और धन गया कि मानो मेरे प्राण ही गये समझो। मेरे घर पर तो घास पूस तक नहीं है तुम तो धन की बात पूछते हो ? मेरी नारी, सुता, बहन आदि को दूसरों से मोल को लेता हूँ। जब सुता का कन्या का ब्याह (विवाह) में धन लूँगा और रिश्ते नाते गाँव वालों को भी थोड़े-थोड़े लोगों को निमंत्रण दूँगा ज्यादह लोगों को नहीं न्यौतूँगा। वरना मेरे दाम ज्यादह खर्च होंगे, सो मैं धन दूँगा ही नहीं। इस प्रकार के कष्टों को पाकर धन को जोड़ा है। यह राजा माँगकर मुझे बहुत बांधा पहुँचायेगा ॥ १४८ ॥

दोहा –

भूप पासि माया थकी, पैंडो लीयो छुड़ाय।
पाप थकी किम जीति हो, सो है अति दुख दाय ॥ १४९ ॥

- दाता वचन

अर्थ - राजा के पास तो वैसे ही बहुत माया होती है फिर भी तेरी माया ले लेगा। पाप की कमाई पास में अधिक समय तक न रहेगी, न सुख ही देगी, बल्कि अति दुख को ही देने वाली होगी। प्राप्त हुई आमदनी को धर्म में जरा सी भी खर्च नहीं करना यह अन्याय है। ऐसा अन्याय करने से भी बहुत दुख प्राप्त होता है ॥ १४९ ॥

अडिल्ल छंद–

तुमकौं सुझै सोहि करो म्पाणें नरो,
पर भो अति सुख होय नरक में न हि परो।
घरी-घरी मैं वीर कहां लौं बोलीये,

पाप थकी दुख होय पुण्य सुख तोलीये ॥ १५० ॥

अर्थ - अरे होशियार तुम्हें जैसा लगे सो करो लेकिन हम इसलिए कह रहे हैं कि पर भव में अति सुख पूर्वक जीवन व्यतीत हो, नरक की अति दुःसह दुखों को न उठाना पड़े। बार-बार मैं कहाँ तक बोलूँ ? अथवा अधिक कहाँ तक बोलूँ ? बात मात्र इतनी सी है कि पाप से दुख ही दुख भोगने पड़ेंगे और पुण्य करने से सुख ही सुख प्राप्त होगा ॥ १५० ॥

दोहा –

कपट भरी वातैं सकल, हम पैं कहो बनाय।
सो कैसे हम पैं चलैं, हम चतुरा अधिकाय ॥ १५१ ॥

- सूंम वचन

अर्थ - दातार को सूंम कहता है कि अरे ये कपट भरी बातें बना-बना कर हमें क्यों कहां तक सुनाओगे। कपट भरी बात हम पर कब तक चलेगी। हम भी तुम से अधिक चतुर बुद्धिमान है। तुम हमें क्या समझाओगे ? जो न समझा हो उसे ही जाकर समझाओ ॥ १५१ ॥

सवैया (३१) –

सकल दगा बाजी को मूल एक लोभ,
यार ताको में धारी सारी वात को सुनैया हों।
मोपै कहे आय वात बुधितैं बनाय नी,
की माल कौं छिनावै ताहू भेद को जनैया हौं।
जांनै तू यह दीन किमी भांति करैं सो,
तो प्रान क्यों न जावो मेरे विरद कोनि भैया हौं।
एक वार सुनि अब फेरि कहैं जंग हो है,

दान नही करौं वीर उलटो छिनैया हौं ॥ १५२ ॥

अर्थ - सभी दगा बाजी का मूल एक लोभ है। तुम जो कह रहे हो बात को बनाकर सो बातों के जाल में फंसा हमारे धन को छिनना चाहते हो या छिनवाना चाहते हो, तुम्हारी बातों का सब भेद हम अच्छी चरह जानते हैं। तुम तो जानते हो कि यह तो दीन-हीन है किसी भी तरह से धन को छीन लेगें। सो मेरे तो प्राण चले जायेंगे परन्तु हमारे पर इतनी सी दया नहीं है कि जो हम धन को ऐसे ही दे देवेंगे। एक बार तुम्हारी बात को सुन लिया है अगर अब फिर से कहोगे तो जंग (झगड़ा) हो जाएगा और दान देने की बजाय उल्टा तुम्हारा धन छीन लेगें। तुम हमें दान देने की बजाय, हमसे ही दिलाना चाहते हो ? ॥ १५२ ॥

सवैया (३१) –

मेरी धाक मांनि कभू रांक नही गैल आवै,
आगे घने दीनन कुंलीनें है छनाय जू।
करज ले आयो सो भी भोमि में धरायो पीछो,
दाम नैं दिवायो मांगै जुध को उमाय जू।
मोकुं सब जानैं यह पर धन को हरन हार,
रांकन की दया कभू उमरि मैं न कराय जू।
ऐसो दिढ़ हीया मेरो कष्ट तैं कुमायो माल,
मोकुं कहै दान देहि हीये नही भायजू ॥ १५३ ॥

अर्थ - मेरी बात को मानोंगे तो कभी रंक (भिखारी) नहीं रहोगे। और धन से हीनता न आवेगी और अभी मैं कर्ज लेकर आया हूँ अगर पीछे माँगने को आया तो युद्ध (झगड़ा) करना ही एक उपाय है अर्थात् लड़ाई करके बिना दाम दिये ही उसको यहाँ से भगा देवेंगे। मुझे सब जानते हैं कि मैं पर के धन का हरण करने वाला हूँ रांकन (भिखारियों) पर हमने अपनी पूरी उम्र में कभी

दया नहीं की। ऐसा कठोर दिल मेरा है, इस प्रकार से कष्टों से माल को कमाया है। और तुम हसे कहते हो कि दान दो, सो यह बात हमारे दिल में नहीं भाती है॥ १५३॥

दोहा –

भली कहैं ही वीर तुम, क्रोध करत हो धाय।
जीवन के तो जगत मै, जस होय जे विधि लाय॥ १५४॥

- दाता वचन

अर्थ - दातार सूंम को भली बात को कहता है तो सूंम क्रोध को धारण करने लगता है। संसार में अपने जीवन में जैसे भी जस मिले वही उपाय करना चाहिये। और जिससे जग में अपयश या निन्दा हो ऐसा काम नहीं करना चाहिए। इज्जत का जीना ही जीना है, बिना इज्जत अपयश के जीना कोई जीना नहीं है। दान, धर्म किये बिना जीना पशुओं के समान जीना कहलाता है जो कि किसी काम का नहीं है॥ १५४॥

चौपाई –

क्रोध कीये जग अपजस होय,
क्रोध थकी पर भव बहु दुख जोय।
क्रोध भलो नही सुनि हो वीर,
तातै क्रोध तजो बुधि धीर॥ १५५॥

अर्थ - संसार में क्रोध करने से सदा अपजस ही फैलता है। और क्रोध से पर भव में बहुत ही दुख भोगना पड़ता है, संसार में कभी भी किसी के द्वारा क्रोध को अच्छा कहने वाला नहीं मिला। और क्रोध से तो बुद्धि ही भ्रष्ट हो जाती है धैर्य खत्म होता है। क्रोध में अन्धा हुआ व्यक्ति, क्रोध में आकर कभी दूसरों को मारता है तो कभी पुलिस की मार खाता हुआ थाने में जेल की सजा पाता है, यदि

सामने वाले से कमजोर होते हैं तो स्वयं के हाथ पैर तोड़ लेते हैं या स्वयं फांसी लगाकर या जहर खाकर स्वयं मृत्यु को प्राप्त हो जाता है ॥ १५५ ॥

सवैया (३१) –

हाय हाय जीवन तो हाथ ही मैं राखत है,
मर नो असान कहां जग मैं वतायो है।
जीवन के काज जीव करै घनें घनें साज,
पीढ़ी घर पालि बंधै रागी बहू थायो है।
तू ही अनोखो एक ज्ञान को करैया यार,
वार-वार मरन तनों सवद सुनायो है।
तातैं ऐसे वचन अशुभ भूलि न वखांन भव्य,
सुता सुत नारि धन सुख कौं बनायो है ॥ १५६ ॥

- सूंम वचन

अर्थ - हाय-हाय जीवन तो अपने हाथ में ही है संसार में मरना संभालना इतना आसान कहां बताया गया है। जीवन को बनाये रखने के लिए ही संसार में जीव अनेक प्रकार के कार्य करता है। अपनी भी अनेक प्रकार से साज संभाल करता है। घर में भी सबकी रक्षा के लिए राग के फंदे में पड़ता जाता है फिर सबकी चौकीदारी करता रहता है। यह सब बताने वाला तू ही एक अनोखा ज्ञान को कराने वाला है। जो बार-बार मरने की शिक्षा सिखाने व सुनाने को आ जाता है। इसलिए ऐसे अशुभ वचन का बखान भव्य तूम भला यहाँ पर मत करो। संसार में सुता, सुत, नारि और धन सुख देने के लिए ही तो बनाये गये वरना इन सबकी आवश्यकता ही क्या थी ? ॥ १५६ ॥

दोहा –

हमकौं तुम क्रोधी कहो, जानी कहा सयांन।

देख विचारि जु भासिए, धारि हीए मैं ज्ञान ॥ १५७ ॥

अर्थ - तुम हमें चाहे क्रोधी कहो, चाहे अज्ञानी कहो, हमने जो देखा विचार कर जो कुछ भी मेरे आत्मा में जितना भी ज्ञान था सो कह दिया है। अब जो तुम्हें अच्छा लगे सो करो और आत्मा में धारण करो ॥ १५७ ॥

सवैया (३१) –

क्रोध तो हमारै कभू भूलि हू न आवत है,
काढ़ो क्यों न गारी-प्यारी सिर मैं लगाय जू।
ऐसी ऐसी वातनखें क्रोध नही आवत है,
दान दाम देहि यह वैन दुख दाय जू।
दाम ही तै लोक मांहि बड़े हम वाजत हैं,
जांहि जहां आदर बहू धन तैं कराय जू।
धन ही तैं जीवन अर मान बहोत धन ही तै,
अैसो धन लाल कहो कैसे दीयो जाय जू ॥ १५८ ॥

अर्थ - क्रोध तो हमारे पास कभी भी भूल कर भी नहीं आ पाता है, तुम मेरे ऊपर चार गालिया भी निकालो उन्हें भी हम सिर पर से निकाल देगें। ऐसी वैसी बातों पर मुझे क्रोध नहीं आता, बस मेरे लिए तो जो दान देने के वचन कहता है तब ही हमें बहुत दुख होता है और क्रोध आता है। दाम से ही लोक में हम बड़े आदमी कहलाते हैं, और फिर जहाँ कहीं भी जाते हैं वहीं पर हमारा बहुत आदर सम्मान होता है। धन ही से जीवन है और धन से ही बहुत मान मिलता है, धन से ही तो धन्नालाल कहलाता हूँ। अब बताओ ऐसे धन को दान में कैसे दिया जा सकता है ? ॥ १५८ ॥

दोहा –

धन देवो नहीं दान मैं, राख्यो चहे मान जिन।

बिना धर्म जीवन विफल, मान न होय अयांन ॥ १५९ ॥

- दाता वचन

अर्थ - धन को तो दान में देना नहीं चाहते और मान रखना चाहते हैं सो जिन देव कहते हैं कि धर्म के बिना यह सारा जीवन ही विफल है। धर्म के बिना अपना जीवन जीवन ही नहीं है। धर्म के बिना कहीं किसी को मान नहीं मिलता। और भव-भव में अपमानित होना पड़ता है। कहीं शान्ति नहीं मिलती ॥ १५९ ॥

अडिल्ल –

मान धर्म तै होय पूज्य पद पाय है,
देवा करि नमनी कति को पद थाय है।
धर्म बन्धु जग मांहि सरण सबकौं सही,
तातैं मान विहाय दान देनो भही ॥ १६० ॥

अर्थ - धर्म से ही संसार में मान एवं गुणों से युक्त पूज्य पद की प्राप्ति होती है। धर्म के प्रभाव से धर्मी के चरणों में देव नत मस्तक हो जाते हैं ऐसा पूज्य पद भी धर्म से प्राप्त हो जाता है। संसार में धर्म से युक्त बन्धु का मरण सबसे अच्छा है। इसलिए दान देना ही अच्छा है। धर्माचरण पूर्वक मरण से तो संसार के समस्त जन्म-मरण आदि के दुखों से छुटकारा मिल जाता है। और अपनी आत्मा सदा के लिए मोक्ष सुख के लिए प्राप्त हो जाती है ॥ १६० ॥

दोहा –

मान विना जीवन जगत, इक छिन जोग्य न जानि।
पै हम इक धन कारनैं, तज्यों मांनि हित आंनि ॥ १६१ ॥

- सूंम वचन

अर्थ - संसार में मेरे लिए मान से रहित यह जीवन जीना एक क्षण भी योग्य नहीं है। लेकिन एक दान के कारण मान को तजना ही हितकर है ॥ १६१ ॥

सवैया (३१) –

हमें कहो धाम धन राखि मान ठांनत हो,
सो तो हम दाम चहैं मान की निचाहि जू।
दाम के रहैं तैं कोऊ काढो क्यों न धनी गारि,
मारो सिर आय भावै बोलो उकलाय जू।
हम नै तो भैया घनो भार धीरि सीस,
ऊपरि पनही उठाय पार तनी मगधाय जू।
ऐसी रीति माल भयो मान कहो कैसे रह्नो,
हमें कहै दान देहि कैसें दीयो जाय जू॥ १६२॥

अर्थ - हमें बताओ घर और धन रखकर मान कहाँ करता हूँ ऐसी स्थिति में हमारे लिए रहना नहीं चाहिए हमें तो दाम की जरूरत है। दाम के जोड़ने के लिए तो कोई अगर मुझे गालिया भी निकाले तो उसे भी मैं सिर के ऊपर से निकाल दूँगा, मतलब न रखूँगा और अपने भावों में भी आकुलता नहीं लाऊँगा। अरे भैया धन के खातिर तो हमने अपने सिर पर बहुत सारा बोझा रखा है। और दूसरों की जूतियाँ भी उठाकर मार्ग को पार किया है ऐसी रीति (तरीके) से तो माल जोड़कर रखा और मान की भी चिन्ता नहीं कि ऐसी स्थिति में दान में माल कैसे दिया जाय ? ॥ १६२ ॥

दोहा –

मही मान तेरे कछू, दगा बाज सिर मोर।
माया फल तैं दुरगति, होय पाप की ठोर॥ १६३॥

- दाता वचन

अर्थ - मेहमान जो तेरे है सो वह तेरे साथ दगाबाजी करने के लिए तेरे सिर

पर रखे मुकुट के समान है। माया चारित्र के फल से तो दुर्गति होती है। माया तो पाप का स्थान है। इस प्रकार दातार कहता है। ''माया तिर्यग्योनस्य'' कहा गया है अर्थात् मायाचारी करने से तिर्यंच गति का आश्रव होता है। पशु-पक्षी की पर्याय प्राप्त होती है॥ १६३॥

गीता छंद –

पाप में द्रव्य खरच्य मूरिख धरम मैं मूजी भयो,
नही जाने को गति होय तेरी तिसी विधि तू परनयो।
विन धर्म पर भव लहै बहु दुख सहनकौं समरथ नही,
ते देखते ही प्राण भय ले नरक की अैसी मली॥ १६४॥

अर्थ - पाप में द्रव्य को खर्च करता है और धर्म में खर्च करने के लिए मूर्ख अज्ञानी हो जाता है, न जाने तेरी कौन गति होने वाली है जिसकी जैसी गति होनी होती है वैसी ही उसका परिणाम होता है। परभव में धर्म के बिना बहुत ही दुखों को उठाना पड़ता है। तू उनको (दुःखों) को उठाने में समर्थ नहीं है नरक गति की ऐसी भयानक गलियाँ है कि जिन्हें देखते ही नहीं बनती है। इसलिए कहते हैं कि भैया अपने जीवन में कुछ धर्माचरण को करो जिससे दोनों भवों में सुख को प्राप्त हो सको। उस नरक गति में चौबीसों घण्टे मार-काट, भूख, प्यास, शीत, उष्ण, मानसिक, वाचनिक व शारीरिक बहुत से असहनीक दुखों को हर समय भोगते रहते हैं। वह किसी भी तरह के क्षण के लिए सुख नहीं मिलता है॥ १६४॥

दोहा –

तो सो पिंडत बहु गुनी, पर उपदेस कदाय।
हम नैं तुछ सी उमरि में बहु देखे चितलाय॥ १६५॥

- सूंम वचन

अर्थ - सूंम कहता है कि मैंने तुम जैसे उपदेश देने वाले पंडित बहुत देखे हैं, हमने तेरी जैसी उम्र में बहुत से पंडितों में चित्त को मोहित किया प्रभावित किया। दूसरों के उपदेश को पण्डित लोग बहुत लेते हैं, पर अपने आचरण में कुछ भी नहीं उतारते हैं। मात्र कथनी होती है करनी नहीं होती है। ऐसे व्यक्ति को कहा है कि - जिसकी कथनी और करनी में अन्तर है वह मनुष्य नहीं व्यन्तर है॥ १६५॥

सवैया (३१) -

अैसे अैसे मुनि कैं उपदेश द्रव्य खोय,
देत तो हम दाम कैसे इक ठोकराय जू।
सुनें सब वैन पैं न एक मन मांहि आय,
जानैं सब सठा भले चातुर हम पाय जू।
दीयो नांहि तब हू मैं घनो कष्ट आप लयो,
तन के जरावन को मो सर जक आयो जू।
विद्या धार केऊ कहै देहि दान मोसरहे सो,
भी मैं दीयो नांहि जीयो हठ लाय जू॥ १६६॥

अर्थ - इस प्रकार के उपदेश मुनि के द्वारा होते तो अभी तक को,मैं सारा द्रव्य ही खो देता, फिर हम दाम इकट्ठे कैसे करते। तेरे ये सारे वचन हमारे मन को नहीं सुहाते। तुम सब तो मूर्ख अज्ञानी ही हो। हम तुमसे तो बहुत चतुर हैं। तुम्हारे द्वारा इतना कहने के बाद कुछ भी दान नहीं दिया। और आपको मैंने बहुत कष्ट दिया है। और शरीर को जर्जरित किया साथ ही सिर को पचाते-पचाते सिर भी दुखने लगा। हमसे और भी विद्वानों ने दान देने को कहा था फिर भी मैंने दान को नहीं दिया। देने के नाम से तो मेरा जीव दुखी होता है॥ १६६॥

सोरठा -

कहैं कहालुं वीर, जो मन आवै सो करो।

तुम चातुर हो धीर, पै द्रव्य देनों दान कुं ॥ १६७ ॥

- दाता वचन

अर्थ - अरे सूंम मैं तुमसे कहां तक कहूँ। अब तो हम ही थक गये, तुम्हारे मन में जो हो सो करो। तुम अपनी चतुराई से काम करो लेकिन द्रव्य को दान में अवश्य देना। दातार वचन। दान में अनेक गुण हैं, दान के प्रभाव से संसार में समस्त प्रकार के इष्ट रूप ही संयोग प्राप्त होते हैं। रंच मात्र भी कभी दुख प्राप्त नहीं होता है ॥ १६७ ॥

सवैया –

कहीए कहांलुं वीर एक की पचास कहैं,
मानैं नही काकी आपने चित्त की कराय जू।
घरी घरी कहीए अरमानत हो खेद मोतो,
ऐसी ऐसी वातन में हाथ नहीं आय जू।
कहीए तुमारे हित कारन कुं भली वात,
हमकौं तो तुम पैतैं कछु नही चाहि जू।
तातैं भैया अबलों तो कही सो तुम क्षमा करो,
अबै भूलि वैन तु मैंने कहाय जू॥ १६८ ॥

अर्थ - सूंम अब कहाँ तक कहें वह तो एक बात की पचास बात करता है, मानता तो किसी की नहीं है, अब अपने मन को मलिन कहाँ तक करें ? बार-बार कहने से दुख को मानता है। ऐसी बातों से हाथ में पकड़ने में आने वाला नहीं है। सूंम हम तो तुम्हारे ही हित की बात को कह रहे हैं। आपका ही हित चाहते हैं। बाकी हमें आपसे क्या लेना देना। इसलिए भैया अब तक हमने जो कहा है उसके लिए हमें क्षमा करना और आगे के लिए हम तुमसे कुछ भी भूलकर भी नहीं कहेंगे। जैसा तुम्हें रुचे सो करना ॥ १६८ ॥

दोहा –

अरे वीर तुम कहन कौं, हम नही बुरो मनाय।
तुम तो हितदा कहत हो, पै मो मन नहीं आय॥ १६९॥

- सूंम वचन

अर्थ - सूंम दातार से कहता है कि अरे वीर हम तुम्हारी बात का बुरा नहीं मानते हैं। तुम तो हमारे हित की ही बात कह रहे हो, परंतु तुम्हारी बात हमारे मन में असर नहीं कर रही है॥ १६९॥

सवैया (३१) –

तुम से उपगारी जन मोकुं नांहि मिले कोय,
ऐसो कष्ट पाय मोकों धर्म में लगावो हो।
मेरी अज्ञानता के सुनि कैं करूर वैंन भाखो,
उपदेस ओर दोष नांहि लावो हो।
तुम कौतो चाहि नांहि करना तुम हीए मांहि,
पर के भले करवें कौं अेसी वतावो हो।
तातैं हित लाय मोकों कहो सीख बार-बार,
पर के भव सुधरन कौं मारिग चलावो हो॥ १७०॥

अर्थ - सूंम कहता है कि तुम्हारे बराबर उपकारी हमें अभी तक कहीं पर भी नहीं मिला जो इस प्रकार से कष्टों को उठाकर धर्म में लगाता हो। मेरी अज्ञानता के कारण ही आपका उपदेश सुनकर मेरे वचनों में क्रूरता रूप वचन निकल रहे हैं आपके उपदेश में कुछ भी दोष नहीं है। तुमको अपने मन में कुछ भी चाह नहीं है। तुम तो दूसरों का भला करने के लिए ही ऐसी बातों को बता रहे हो। इसलिए तुम तो हित करने के लिए शिक्षा को बार-बार कहते हो जिससे दूसरों

का (मेरा) परभव सुधर जाये। अच्छे मार्ग पर चलाने का तुम्हारा पुरूषार्थ है। इसमें मेरा ही दोष है तुम्हारा कुछ भी दोष नहीं है॥ १७०॥

दोहा –

मेरे मन आई अबैं, हम द्रव्य खरचें वीर।
जीवत आंखन देख लैं, मुए पिछें को सीर॥ १७१॥

- सूंम वचन

अर्थ - अब आज मेरे मन में बात आ गई है कि हम दान में द्रव्य को खर्च करे और अब आगे भी यही आकांक्षा करेंगे, अपने मुख को अब दान करने से पीछे नहीं मोड़ेगें अर्थात् अब द्रव्य को दान में खर्च करेंगे॥ १७१॥

सवैया (३१) –

घर मैं सुता दोयता के करि हों विवाह भले,
लाख न को माल भलो सम धन को द्याय हौं।
जाति कौं भुलाय भलि भांति ज्यों नारि करो,
सब कौ रिझाय घनो पुण्यकौं मिलाय हौं॥
पूत पर नाऊं घने उछव कराऊं वीर,
ओर कोई जाति पूत व्याहूं उमगाय हूं।
ऐसे माल दे हूं पुण्य जगत जस ले हूं तवै,
हमैं कहो सूंम अब कैसे कहाय हूँ॥ १७२॥

अर्थ - सूंम कहता है कि घर में अभी दो बेटियाँ है उनका विवाह करके फिर भले जो लाखों का माल रक्खा है, उसे दान में दे दूँगा। और अब जाति के भेद को भुलाकर भलि भांति नारी को प्रसन्न करने के लिए बहुत सा दान दूँगा। और बहुत पुण्य कर्मों का उपार्जन करूँगा। पुत्र का अब विवाह करवाऊँगा, उत्सव भी

करवाऊँगा और अपनी जाति में भी जो बिना विवाह के बेटे-बेटी बैठे हैं उनका हर्ष पूर्वक विवाह कर दूँगा। इस प्रकार से माल को दान में देकर संसार में यश को प्राप्त करूँगा। तब फिर हमसे कहना कि हम कैसे सूंम कहलाते हैं॥ १७२॥

दोहा –

जग जस कारन काज जो, तामैं पुण्य न कोय,
करै पाप अर पुनि चहै, सो अति पापी होय॥ १७३॥

- दाता वचन

अर्थ - संसार में जो भी यश (जस) को बढ़ाने वाले काम हैं, उन कामों के करने से पुण्य नहीं होता है। क्यों उसमें मान व माया कषाय का समावेश होता है। वैसे ही अगर कोई पाप को करे और पुण्य चाहे सो पुण्य के बदले उसे तो महा पाप का ही बन्ध होता है। बीज को खेत में जैसा बोयेंगे, वैसा ही फल प्राप्त होगा। बबूल के बीज को बोकर आम की प्राप्ति कभी भी नहीं हो सकती है॥ १७३॥

अडिल्ल छंद –

गिरस्त के जो काज जते विवहार के,
तिन मैं पुण्य न कोय सकल अघ भार के।
व्याह आदि पुण्य होय तवैं सब पुनि लहै,
इन काज न मैं पाप वांनि जिन किम कहै॥ १७४॥

अर्थ - गृहस्थ के जो काम है, शादी-विवाह के उनसे कुछ भी पुण्य नहीं होता है, सभी कार्य पाप के ही कारण होते हैं जो आगे दुर्गति में ले जाने वाले हैं। यदि विवाह आदि के कामों से पुण्य बन्ध हो तो सब लोग उसे करने लग जायेंगे, इस सब गृहस्थ के कामों से पाप होते हैं ऐसा मैं मानता हूँ क्योंकि जिनेन्द्र देव ने कहा है॥ १७४॥

चौपाई –

तातैं इन मै पुण्य न कोय, पुण्य एक परमारथ जोय।

पूजा दान सुरति लिखवाय, कै जिन मिंदर करि पुण्य लाय ॥ १७५ ॥

अर्थ - इसलिए इन गृहस्थ कामों में पुण्य कुछ भी नहीं होता है क्योंकि गृहस्थ के प्रत्येक कार्य में राग द्वेष व कषायों का समावेश रहता है। और दान धर्माचरण में राग-द्वेष व कषायों का अभाव होता है। और उससे आत्मा पवित्र होती है। इससे परमार्थ के काम से जो पुण्य होता है वह भक्ति की प्राप्ति में कारण होता है। आचार्यों ने लिखा है कि पूजा दान आदि से सुगति (स्वर्गादि) की प्राप्ति होती है। अतः जिन मन्दिर बनवाकर महा पुण्य लाभ प्राप्त करना चाहिए। जिन मन्दिर निर्माण, जिन पूजन, गुरूओं की उपासना इन कार्यों को करने से महा पुण्य का बन्ध होता है। जो परंपरा से मोक्ष की प्राप्ति में कारण होता है। अतः इन्हें अवश्य करना चाहिए॥ १७५ ॥

सवैया (३१) –

पापी सुत भये पिता धर्मी भव विफल होय,
पिता पाप सहति सुत धर्मी दुख पाखै है।
पापी पति देख नारि भली मन सोक करै,
धर्म पति नारि दुष्ट देखत उकलावै है।
पापी सुत पिता दुष्ट मेल शुभ माय मिल्यो,
नारि पति दोऊ धर्म रहति हरखावै है।
यह पाए कारण सुनि पुनि को मिलाय,
ऐसो पिता सुत नारि पति धर्मी सुहावै है ॥ १७६ ॥

अर्थ - धर्मी पिता कहता है कि ऐसे पापी बेटे को पाकर आज मेरा सारा जीवन विफल हो गया है। बेटा दान नहीं करता है। पिता पाप सहित बेटे को देखकर बहुत ही दुख होता है पिता जितना धर्मी था बेटा उतना पापी था। पापी पति को देखकर पत्नि मन ही मन शोक को प्राप्त करती है और जब पति धर्मी

होता है और पत्नि दुष्ट स्वभाव की होती है, तो पति रात दिन आकुलता को करता दुखित होता है। पापी पुत्र और दुष्ट पिता का मिलना और पत्नि तथा पति दोनों जब धर्मी होते हैं तब दोनों को हर्ष का पारावार नहीं रहता है। पिता पुत्र और नारि (पत्नि) जब तीनों ही धर्मी मिलें व ऐसा संयोग पुण्य कर्म से ही मिलता है। ऐसा संयोग अति सुहावना लगता है॥ १७६॥

दोहा –

ऐसी जानि सियान मन, पाप निमत दुख दाय।
हितकारक पर भव तनों, मिलै पुण्य तैं आय॥ १७७॥
- दाता वचन

अर्थ - इस प्रकार से पुण्य का फल सुख और पाप का फल दुख जानकर के पाप के निमित्तों का त्याग करना और इस भव पर भव में सुख देने वाले निमित्तों को मिलाना चाहिए। संसार में प्रत्येक सुख रूप सामग्री पुण्य कर्म से ही प्राप्त होती है। पाप कर्म से नहीं। अतः अपने जीवन में जितना हो सके सो उतना अधिक से अधिक पुण्य का अर्जन करते रहना चाहिए॥ १७७॥

चौपाई –

धनी कहन तैं कारज्य कोय, पुनितैं सुख अतैं दुख होय।
जो तुम चाहि होय सो करो, क्यौं विषवाद हीए मैं धरो॥ १७८॥

अर्थ - बहुत कहने से क्या पुण्य से सुख और पाप से दुख होता है। अब जो कुछ तुम चाहो सो करो, फालतू में अपने में विषाद (दुख) रखने से क्या फायदा? विषाद से मन में खोटे परिणाम ही होते हैं, जो अनन्त संसार में भ्रमण करने में कारण होते हैं। अतः सुख को पाना है तो हर्ष और विषाद को हमेशा के लिए छोड़ देना चाहिए। और अपनी आत्मा में समता को सदा धारण करना चाहिए, समता मुक्ति तक पहुंचाने के लिए धर्म द्रव्य के समान काम करने वाली है॥ १७८॥

दोहा –

अरे जीव सजन पुरख, पर उपगारी धीर।
एह हित वाय तुम ही कहो, समझैं जाने वीर ॥ १७९ ॥
- सूंम सुलटन के वचन

अर्थ - दातार से कहता है अरे जीव तुम तो बहुत ही सज्जन व परोपकारी पुरुष हो। यह हितकारी बात को हे सज्जन तुम ही कहते हो तथा संसार में तुम्ही एक सज्जन पुरुष समझे जाने के योग्य हो ॥ १७९ ॥

सवैया (३१) –

मैंने कष्ट पाय द्रव्य जो रचो घनो पाप लाय,
खायो न खुवायो गाडि धरती रज डारी थी।
तेरे उपगार विना भूमि मांहि गड्यो रह तो,
धर्म न सुहातौ पाप दसा अतिभारी थी।
अवैं तेरे निमत पाय जांनी जग रीति ऐसी,
सुता पुत नारि सुख सवैं दुख कारी थी।
धन्य जिन वैन धन्य तेरे सुभाव भव्य धन्य,
मोहि भाग तोहि संगति उर धारी थी ॥ १८० ॥

अर्थ - मैंने जो अभी तक अनेकों कष्टों को उठाकर जो बहुत सा पाप युक्त धन संग्रह किया था उस धन को न तो हमने ही खाया और न दूसरों को खिलाया मात्र उस धन को भूमि में गाड़कर उपर से रज (मिट्टी या बालू) को डालकर रख दिया। यदि आज तेरा यह उपकार न हुआ होता तो सारा धन भूमि में गड़ा रहता, और धर्म भी न सुहाता मात्र पापों को करते करते अपने सिर पर दुखों का अतिभार बना रहता। लेकिन अब तेरा निमित्त पाकर पापों को संसार

भ्रमण की ही यह रीति (परंपरा) को जान गया हूँ। और मैं जो अभी तक स्त्री, पुत्र, पुत्री को सुख रूप मान रहा था परन्तु अब आज मैं जान गया हूँ कि स्त्री पुत्र पुत्री व धन सब सुख नहीं बल्कि दुख को ही देने वाले हैं। धन्य हैं जिनवर के वचन, धन्य है तेरा स्वभाव, आज मेरा भी धन्य भाग्य है कि तुम जैसे भव्य जीवों की संगति से धर्म को अपने हृदय में धारण करूँगा। और अपने इस नर जन्म को दान धर्म करके सफल बनाऊँगा। क्योंकि फिर इस नर भव, उत्तम कुल, उत्तम देव, शास्त्र, गुरु का पाना अति दुर्लभ है मिलना असंभव ही है॥ १८०॥

दोहा –

जिन के भव थिति है निकट, तिन की यह विधि होय।
ताकैं दुरगति आव बंध, ते सुलटें नहीं कोय॥ १८१॥

- दाता वचन

अर्थ - जिन जीवों की संसार भ्रमण से निकलने की स्थिति अति निकट आ चुकी है ऐसे जीवों के लिए ही उपर्युक्त विधि कही गई है। और जिन जीवों को दुर्गति का आयु बन्ध नहीं हुआ है ऐसे जीव ही सुलट पाते हैं और जिन जीवों को दुर्गति का बन्ध हो गया है ऐसे जीव कभी किसी के उपदेश से भी नहीं सुलट पाते हैं॥ १८१॥

चौपाई –

जे जीय भव्य होय हैं वीर, तिन कुं जिन वच रूचै सुधीर।
ते जीव रासि अभव्य की होय, तिनकौं जिन वच रूचै न कोय॥ १८२॥

अर्थ - संसार में जो जीव भव्य होता है उसे जिनवर के वचन रूचिकर लगते हैं और उन वचनों को वह बहुत ही धैर्य पूर्वक ही सुनते हैं। संसार में जितनी भी अभव्य राशि है उन्हें जिनवर के वचन नहीं रूचते हैं। उनके वचनों को वह गप्प समझ छोड़कर चला जाता है॥ १८२॥

दोहा –

सकल काज भव्य निमततैं, सफल होत है वीर।
जैसे तेरे निमत तैं, मैं सुलट्यो हों धीर ॥ १८३ ॥
- सूंम सुलटे के वचन

अर्थ - सूंम दातार से कहता है कि हे वीर ! संसार के सभी काम भव्य जीवों के पूर्ण होते हैं सफल हो जाते हैं। जैसे तुम्हारे निमित्त से मैं (सूंम) जैसा अज्ञानी भी सुलट गया हूँ। जैसे मुलायम रस्सी के पत्थर पर बार-बार रगड़ खाने से पत्थर भी कट जाता है तो क्या किसी को बार-बार प्रेरणा देगें तो जीवों के परिणाम नहीं सुलटेंगे ? अवश्य ही जीव सुलट जावेंगे ॥ १८३ ॥

सवैया (३१) –

मेरे पाप भाव न की कंबलौं बनाय कहों,
धर्म तैं विरोध राख जुग भो विगारे थे।
कोऊ पुण्य जोग तो से सज्जन मिलाप भयो,
भई दिष्ट ऐसी मानूं सवै पाप न्यारे थे।
तेरो उपगार भैया कवलों बखान करों,
तू तो उपगारी मेरे बंधू बंध कारे थे।
तोसे धन्य जीव अन्य जीवन को वांछै हित,
तेरो निमत बिना मैंने सवैं दिन हारे थे ॥ १८४ ॥

अर्थ - मेरे पाप रूप भावों की मैं कहाँ तक कहानी कहूँ ? मैंने अपना सारा जीवन ही धर्म से विरोध करने में ही बिगाड़ दिया। आज कोई महान् पुण्योदय से तेरे जैसे सज्जन पुरुष के साथ मिलाप हुआ, उसी समय से हमारी दृष्टि ऐसी बदली कि मानो हमारी आत्मा से सारे पाप आज न्यारे हो गये हों। भैया तेरा उपकार का बखान

मैं कहाँ तक करूँ ? तुम तो हमारे हितेषी बान्धवों के समान ही हो।

तेरे समान धन्य जीव अन्य (अगले) जीवन (भव) में भी हित की इच्छा करते हैं। तेरे निमित्त के बिना मैंने अपने जीवन के सारे दिन हार दिये हैं अर्थात् व्यर्थ में खो दिये। बहुमूल्य जीवन को बिना मूल्य समझे यों ही खो दिये। लेकिन अब जब तक संसार में मेरा जन्म मरण हो रहा है। तब तक मुझे हर जन्म में तुम्हारे जैसे शुभ चिन्तक सज्जन पुरुषों का समागम मिलता रहे यही भावना सदा भाता हूँ॥ १८४॥

सवैया (३१) –

तेरो उपगार भूलैं दोऊ भव विगर,
जाय किरत घनी जोकों ताकों पाप उपजाय जी।
तेरो गुन भूलैं भैया भरमन दुख मांहि,
होय तेरो उपगार भूलैं निंदक कहाय जी।
तू तो मोहि प्यारो ओर जगत सब न्यारो,
तू जगत को पियारो जीव सफल कराय जू।
तातै तेरे करतव्य कौं भूलै सोही महा दुष्ट,
मांनै उपगार सो ही सर्वै सुख पाय जी॥ १८५॥

अर्थ - सूंम कहता है कि जो मैं तेरा यह उपकार भूल गया तो निश्चित ही मेरे दोनों भव बिगड़ जायेगें। संसार में तेरी बहुत ही कीर्ति फैलेगी और जो मैं तेरा यह उपकार को न मानू तो मुझे पाप का ही उपार्जन होगा। और तेरे गुण को यदि भूल गया तो भैया हमें फिर से संसार भ्रमण करना होगा अनेकों दुख भोगने होंगे। और तेरे उपकार को भूलने वाला निन्दक ही कहलायेगा। संसार में हमको तो अब तू ही सबसे अधिक प्यारा है और बाकी सब मेरे से न्यारे हैं, पराये हैं एक तू मेरा सबसे बड़ा हितेषी है। आज तुमने मेरा सारा जीवन सफल करवा दिया है।

इसलिए अब जो मैं तेरे उपकार को व कर्त्तव्य को भूलूं सो मैं महा दुष्ट कहलाऊँगा। तेरा उपकार मेरे लिए सब प्रकार के सुख को देने वाला है ॥ १८५ ॥

दोहा –

अब या जग जीवन अलप, ढीलन करो सयांन।
जो ग्रो अघ करि माल सो, करो धर्म दे दान ॥ १८६ ॥
- दाता वचन

अर्थ - दातार सूंम को फिर से कहता है कि अब इस संसार में अपना जीवन बहुत ही थोड़े समय का रह गया है, सो हे बुद्धिमान अब कुछ भी ढील मत करो, और जो कुछ भी तुमने अपनी सारी उम्र में कमा कर माल को जोड़ा है, सो अब उस पाप की कमाई को धर्म में देकर (दान में देकर) अपना यह दुर्लभ मानुष जन्म सार्थक कर लो ॥ १८६ ॥

अडिल्ल छंद –

तेरे जीवत सकल धर्म करि दांम रे,
काय तजैं फिरि नांहि दाम कछू काम रे।
जो कछू ले नो लार भार सुख को सही,
तो दे दान सुभाय और पुनि करिं कही ॥ १८७ ॥

अर्थ - तेरे जीवन में जो तूने द्रव्य को जोड़ा है सो अब उस द्रव्य को धर्म में लगा देना चाहिए क्योंकि शरीर के छूटने के बाद मरण होने के बाद फिर यह धन यहीं पर मिट्टी में मिल जायेगा, कुछ भी तेरे काम में दाम नहीं आवेगा। जो कुछ भी अपने परिवार को देना हो सो देकर अपने भार को खत्म कर सुखी होवो फिर जो कुछ बचे उसे दान में देकर महान् पुण्योपार्जन करों ॥ १८७ ॥

दोहा –

कही सकल तुम नैति को, मैंने करि कबूलि।

जो विधि अब पुनि ऊपजै, भाखो मैं नही भूलि ॥ १८८ ॥

- सूंम सुलटन के वचन

अर्थ - तुमने जो कुछ भी न्याय नीति को कहा मैं उस संपूर्ण नीति को कबूल करता हूँ और जिस तरह से, जिस किसी प्रकार से पुण्योपार्जन हो सकता है उसे तुम कहो मैं उन सब बातों को जीवन की अन्तिम श्वांस तक भी उसे कभी भी नहीं भूलूँगा। बल्कि अपने जीवन में आचरण रूप में चरितार्थ करूँगा ॥ १८८ ॥

चोपाई –

जो मोकौं कारज्यवत वाय, सो ही करौं हरख मन लाय।
जैसे मोकुं पर भो मांहि, होय महा सुख दुख नहीं आंहि ॥ १८९ ॥

अर्थ - अब जो कुछ भी मुझे राज्य को बंटवारा करना हो सो तुम उसे हर्षित होकर प्रफुल्लित मन से करो। और जैसे भी मुझे पर भव में महा सुख प्राप्त हो सके सो काम करो। जिससे दुख का नामो निशान भी न रहें। सदा के लिए संसार के आवागमन के दुःखों से छुटकारा मिल जावे ॥ १८९ ॥

दोहा –

अब यह सुलट्यो जीव सुभ, भई धर्म की चाहि।
पाप थकी डरप्यो सही, निज भव सफल कराय ॥ १९० ॥

- दाता वचन·

अर्थ - अब यह सूंम सुलट गया है यह सब अच्छा हुआ और धर्म की शुभ भावना की इच्छा हुई, पापों से भयभीत हुआ सो भी अच्छा हुआ अब जरूर नर भव सफल हो जायेगा। भवभ्रमण से सदा के लिए छूट जाएगा ॥ १९० ॥

सवैया (३१) –

अरे भव्य तेरे व तेरे निकट संसार भयो,

तातैं तैने भली वात हिरदै मैं आनी हैं।
करो जिन गेह दान देहि आंनि दोह ओर,
पुस्तक लिखावो चाहो खोए अघ हानी है।
देहिमुनि दांन धनी हीए मांहि भक्ति आनि,
करना चित लाय देहि दान दीन जानी हैं।
संघ कुं चलाय सिध खेतर पुजाय भैया,
अैसें दाम लाय होय सुरग सिव थानी है॥ १९१॥

अर्थ - दातार कहता है कि हे भव्य सूंम अब संसार तेरे निकट है और तुम भी संसार के निकट हो गये हो, इसलिए ही तेरे हृदय में धर्माचरण को करने की इच्छा प्रकट हुई है। अब तो जिन मन्दिर के लिए दान दो और पापों को नाश करने वाली पुस्तक को लिखो। मुनियों को भी हृदय में भक्ति को धारण करके दान देना व दूसरों से भी दिलाना तथा अपने नगर वा गाँव में भी जो दीन हीन दिखें उन्हें भी दान देकर सुखी करना। चतुर्विध संघ का संचालन करना, देव गुरु की पूजा करना, कराना। भैया इस प्रकार से दान देकर स्वर्ग मोक्ष सुख को प्राप्त करोगे॥ १९१॥

दोहा –

छांडि सुमता भाव कुं, जानि धर्म सुखकार।
देन लग्यो शुभ दान बहु, भव भव सुख करतार॥ १९२॥
- सूंम सुलटि चलन (वचन)

अर्थ - खोटे भावों को छोड़कर उत्तम बुद्धि से धर्म सुख को देने वाला जानो, इस प्रकार से भव-भव में सुख को करने वाला अब सूंम दान को उत्तम भावों से देने लगा। और अपने आपको धन्य मानने लगा॥ १९२॥

चौपाई –

ऐसे भले निमत कुं पाय, जीव पाप जुत भी धर्म भाय।

ऐसी जांनि भव्यक जन ओर, करो निमत सुख दानि तिठोर॥ १९३॥

अर्थ - आज ऐसे अच्छे निमित्त को प्राप्त कर पापों से युक्त जीव भी अपने पापों को छोड़कर धर्मी बन धर्म भावना को भाने लगता है। ऐसे भव्य जीव शुभ निमित्तों को पाकर उत्तम दान को सदा देते रहना। यही परलोक तक साथ में जाने वाला होगा॥ १९३॥

दोहा –

अैसे दाता संगतै, सुलटि सूंम की होय।
भव विरथा सत संग बिन, मूरख जन को जोय॥ १९४॥

अर्थ - ऐसे उत्तम दातार की संगति पाकर मेरी (सूंम की) बुद्धि सुलट गई, ऐसे सत्संग के बिना एवं मूर्खों की संगति से मेरा यह भव व्यर्थ ही पापों में चला जाता॥ १९४॥

चौपाई –

दाता सूंम तनो संवाद, है यह पुण्य पाप भर जाद।
सूंम सुनत लज्या चित होय, हरखे उर जे दाता सोय॥ १९५॥

अर्थ - यह सूंम दातार का सवाद है जिसमें पुण्य पाप का उत्तम विषय भरा हुआ है। इस विषय को सुनकर बहुत ही अपने मन ही मन में लज्जित हुआ अर्थात् सूंम बाहर से जितना लज्जित हो रहा था उससे अधिक अंतरंग में दातार बन हृदय में हर्षित हो रहा था॥ १९५॥

सवैया (३१) –

दाता अर सूंम की परीक्षा यह परगट है,
सुनैं इस कथन लजै सूंम सो वखानिए।
ऐसी सुनि कथा मांने हरख कुं हीए मांहि,

सो ही चित्त उदार दाता प्रमांनिए।
दाता के हाथ वेख सूंम उर कंपत है,
ऐसो द्रव्य कैसे दीयो जाय सुख दानिए।
एहि परीक्षा है परगट सूंम दाता की,
ओर कोऊ परखन कुं सीध नहीं ओनिए॥ १९६॥

अर्थ - दातार और सूंम की परीक्षा यहां पर प्रकट की गई है। इस कथन को सुनकर सूंम लज्जित हुआ सो अब सूंम की लज्जा का बखान किया जाता है। ऐसी कथा को सुनकर मेरा हृदय हर्ष को प्राप्त हुआ। सो दातार उदार चित्त से प्रमाणित किया है। दातार के हाथों से देते हुए सूंम का हृदय कंपित होता था कि ऐसे कष्ट से कमाये हुए द्रव्य को दान में कैसे दिया जाय ? आज वही सूंम दान को देकर दानी बन सुख का अनुभव कर रहा है। यही दातार और सूंम परीक्षा को प्रकट किया है। और कोई इससे सरल नहीं हो सकती। ऐसा जानना॥ १९६॥

चौपाई –

सूंम सुनत सिर नीचो करे, सुनि कैं तथा सभा पर हरै।
दाता सुनत सभा के मांहि, हरखे चित वोलै उमगांहि॥ १९७॥

अर्थ - धर्म सभा में बीच में सूंम दातार का कथन किया तब सूंम ने लज्जा से अपना सिर नीचे कर लिया। तथा इस कथा ने सारी सभा का मन हर लिया। दातार व सभा भी सुनकर हर्षित चित्त हो, उमंग को प्रगट किया अर्थात् दान देने के लिए मन में उमंग उत्पन्न हुई॥ १९७॥

चौपाई –

कथन सूंम दाता को एह, पूरन कीयो मांनि बहू नेह।
भाडलपुर मैं पूरन कियो बुधि प्रकाश मांहि धर दीयो॥ १९८॥

अर्थ - भाडलपुर में बुधि प्रकाश ने अपने घर में यह ग्रन्थ सूंम दातार का संवाद को स्नेह पूर्वक पूर्ण किया॥ १९८॥

चौपाई –

सुनि कैं भडलापुर के जीव, दान देन कुं लगे सदीव।
दीन दुखी हिम गरमी जोय, देय दान करना करि सोय॥ १९९॥

अर्थ - भाडल पुर में रहने वाले सभी जीव सूंम दातार के संवाद को सुनकर सदा के लिए सभी नगर वासियों ने दान देना शुरु कर दिया। उस नगर में जो भी दीन दुखी लोग गर्मी, सर्दी से दुखी थे उन्हें उनके अनुसार दान देकर सबकी पीड़ा को दूर किया॥ १९९॥

चौपाई –

पातर दान निमत तुछ जांनि, भाव भावै अति उमगांहि।
निति प्रति पूजै जिन सब आय, सुनि जिनवांनि फेरि घर जाय॥ २००॥

अर्थ - सूंम के लिए दान का निमित्त तो थोड़ा सा जानना लेकिन भावना कों भाने में उमंग भी है। अब सूंम नित प्रति भगवान का पूजन और शास्त्रों का स्वाध्याय करके ही भोजन करना फिर घर जाना चाहिए। प्रतिदिन प्रत्येक श्रावक को जिन पूजन शास्त्र श्रवण तथा गुरु उपासना करना चाहिए, फिर घर जाना चाहिए॥ २००॥

चौपाई –

जो कोऊ किरपण होय सही, तो या कुं सुनि देनों ठही।
ताकौं भी बहु पुनि उपाय, पर नति सुभर्तैं सुभ फल थाय॥ २०१॥

अर्थ - संसार में जो भी कृपण हो या कृपण रूप बुद्धि को धारण करने वाला हो, तो उसे इस संवाद रूप ग्रन्थ को अवश्य पढ़ना, सुनना चाहिए।

जिससे वह बहुत पुण्योपार्जन करे तथा उसकी शुभ परिणति हो और शुभ फल को प्राप्त रूप स्थान पावें ॥ २०१ ॥

चौपाई –

भाडलपुर मैं इक जिन गेह, तहां आवै सब करि वहू नेह।
ताकै हीए पाप बहु होय, सो नही आवै अनि सब जोय ॥ २०२ ॥

अर्थ - भाडलपुर में एक जिन मन्दिर है, उस मन्दिर में सब श्रावकों में आपस में स्नेह अति मात्रा में रहता है। और जिसके हृदय में बहुत पाप होता है वह कभी जिनेन्द्र भगवान के दर्शन नहीं कर पाता है। पुण्यवानों को ही भगवान के दर्शन होते हैं पापी जीवों को कभी भगवान के दर्शन नहीं होते हैं ॥ २०२ ॥

दोहा –

धन्य धर्म जिन देव को, धन्य यहै सतसंग।
इनके सरनैं जे भये, पाप किए जिन भंग ॥ २०३ ॥

अर्थ - जिनेन्द्र देव के द्वारा कहा हुआ धर्म भी धन्य है और धन्य है ऐसे संग (उत्तम संयोग) भी, इन जिन देव, जिन गुरु एवं जिन धर्म की जो शरण में रहता है, उनके संपूर्ण पापों का नाश हो जाता है। उक्त तीनों के दर्शन से तो अनन्त भवों के पाप नाश हो जाते हैं ॥ २०३ ॥

दोहा –

तातैं मन वच काय तैं, भक्ति हीए महि लाय।
नमों इष्ट अरहंत कौं, ता फल बहु सुख पाय ॥ २०४ ॥

अर्थ - इसलिए सभी भव्य जीवों को मन वचन काय से हृदय में भक्ति पूर्वक श्री अरहंत भगवान को नमस्कार कर अनन्त सुख को प्राप्त करना चाहिए ॥ २०४ ॥

दोहा –

सूंम भाव दुख दाय है, टेक न कीजे वीर।

दान दीजिए, दीन कुं ए फल लीजे जीर॥ २०५॥

अर्थ - सभी श्रावकों को सदा के लिए सूंम भावों का त्याग करना चाहिए क्योंकि सूंम भाव बहुत ही दुख को देने वाला है। और सदा दीनों को दान देकर उसके उत्तम सुख रूप फल को भोगना चाहिए॥ २०५॥

इति सूंम दातार का संवाद सूंम सुलटिन कथन संपूर्ण

❑

सुमेरु पर्वत का चित्र